thearyasamaj.org

रजि. नं. पी.बी./जे.एल-/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

17 अगस्त व 24 अगस्त 2014

मूल्य : 10 रु.	
वर्ष: 71	अंक: 19-20
सृष्टि संवत् 1960853115	
17 अगस्त व 24 अगस्त 2014	
दयानन्दब्द 189	
वार्षिक : 100 रू.	
आजीवन : 1000 रू.	
दूरभाष : 2292926, 5062726	

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

आर्य मर्यादा साप्ताहिक का श्रीकृष्ण जन्माष्टमी विशेषांक

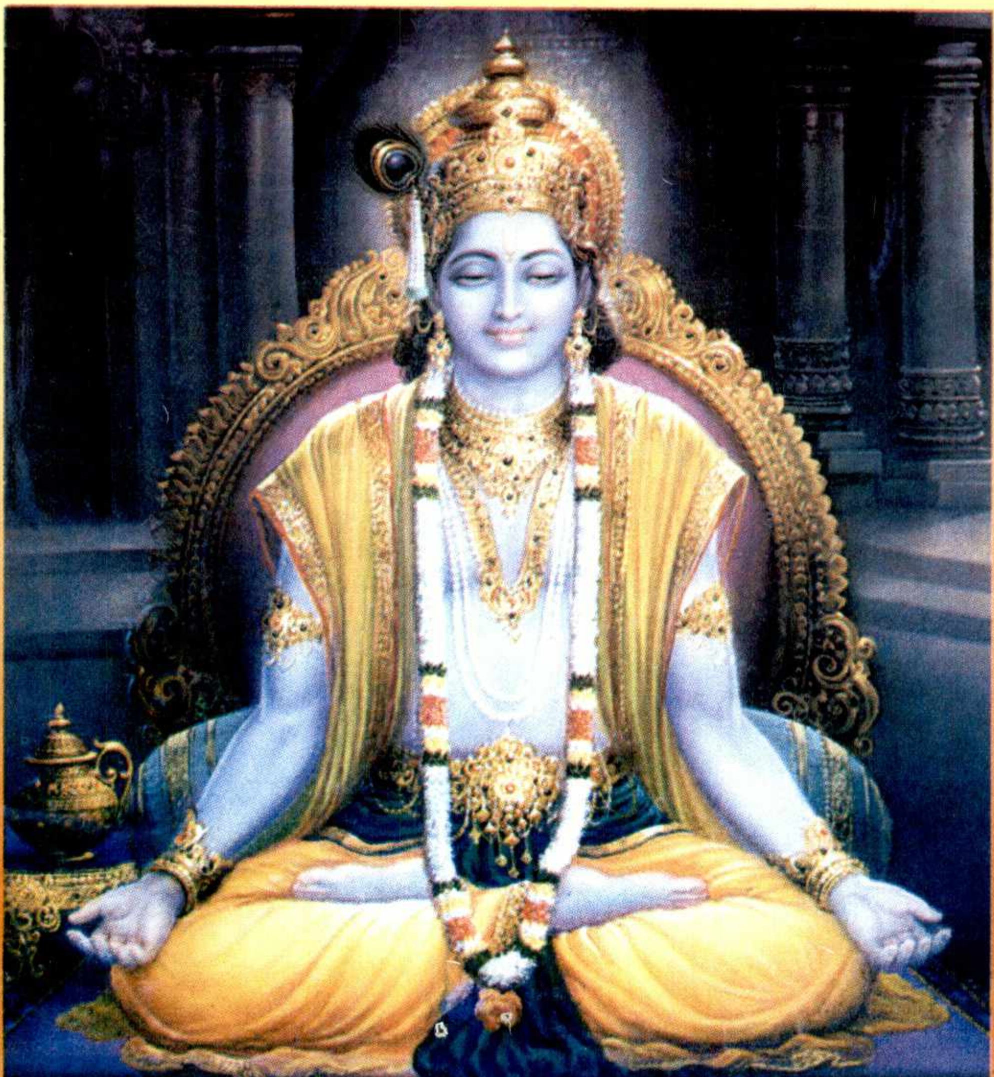

योगेश्वर श्रीकृष्ण

thearyasamaj.org

कृष्ण जन्माष्टमी

आज शुभ दिन है आज नई शुरुआत करें।
खत्म गली सड़ी सब रस्मों रिवायात करें।
सारा नज़ाम बिगड़ा है, नये इन्तज़ामात करें।
खुद को समझें, खुद से कुछ सवालात करें।
आज शुभ दिन है आज नई शुरुआत करें।

अपने अंदर झांके खुद से मुलाकात करें।
कृष्ण को अपने अमल से ही साक्षात करें।
एकान्त में बैठे अपने आपसे ही बात करें।
उसकी आत्मा को आत्मा में आत्मसात करें।
आज शुभ दिन है आज नई शुरुआत करें।

अपने को सुधारें ठीक अपनी आदत करें।
मतभेद को मिटा सब प्यार की बात करें।
हक बात कहें न फ़जूल एतराज़ात करें।
न हक छीनें न किसी के नुक्सानात करें।
आज शुभ दिन है इक नई शुरुआत करें।

जन्माष्टमी पर आज कृष्ण की बात करें।
किसी हारे अर्जुन को जिताने की बात करें।
सुदामा को भी गले लगाएं न मित्र घात करें।
खा किसी गरीब विदुर से ख़त्म ज़ात-पात करें।
आज शुभ दिन है आज नई शुरुआत करें।

कृष्ण के गुणों का ही आयात निर्यात करें।
प्रचारित प्रसारित गीता की तालीमात करें।
सबके ही भेंट पवित्र गीता की सौगात करें।
जीने लायक पैदा जीने के ही हालात करें।
आज शुभ दिन है आज नई शुरुआत करें।

कृष्ण की तरह ही हम कोई कमालात करें।
बुराई के कंस को मार कोई करामात करें।
ख़त्म हम अपने पापों की काली रात करें।
शुरू अब निष्काम कर्म की सुप्रभात करें।
आज शुभ दिन है आज नई शुरुआत करें।

-ले० डा. दर्शन लाल "आजाद"

thearyasamaj.org

महान् तपस्वी योगीराज श्री कृष्ण

ले०—श्री सुदर्शन शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

भगवान् श्री कृष्ण की पूजा सारे भारतवर्ष में तथा विदेशों में भी होती है। उनका जन्म भाद्रपद अष्टमी को सभी स्थानों पर बड़े समारोह से मनाया जाता है। ऐसा कौन भारतवासी होगा जो श्रीकृष्ण महाराज के नाम को नहीं जानता। श्रीकृष्ण महाराज का जीवन महान् प्रेरणाओं से भरा हुआ है। श्रीकृष्ण महाराज का सम्पूर्ण जीवन निष्कलंक एवं निष्पाप रहा है।

17 अगस्त को प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी कृष्ण जनमाष्टमी का पर्व मनाया जा रहा है। यह पर्व प्रेरणा देने वाले होते हैं। अगर इन पर्वों से प्रेरणा ली जाए तभी इन पर्वों का मनाना सार्थक हो सकता है। जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए श्री कृष्ण के जीवन से शिक्षा ग्रहण करें। उनके जीवन का प्रत्येक पक्ष उज्जवल और पवित्र है। श्री कृष्ण महाराज महान् योगी थे क्योंकि योगी ही संयमी होते हैं। अपनी सभी इन्द्रियों पर उनका पूर्ण अधिकार था। गृहस्थी होते हुए भी वह तपस्वी थे। उनकी धर्मपत्नी रूक्मिणी ने एक बार यह इच्छा प्रकट की कि मैं आप जैसा पुत्र चाहती हूं। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा कि देवी इसके लिए तुम्हें तप करना होगा। इस प्रकार दोनों ने 12 वर्ष तक कठोर तपस्या करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संयमी जीवन व्यतीत किया और उसके फलस्वरूप उन्हें एक पुत्र रत्न प्रद्युम्न प्राप्त हुआ जो श्रीकृष्ण महाराज की ही प्रतिमूर्ति था।

उनका जीवन एक योगी का जीवन था। गीता के माध्यम से उन्होंने जो योग सम्बन्धित ज्ञान अर्जुन को युद्ध के मैदान में दिया वह भी उनका योगी होने का महान् प्रमाण है। आत्मा और परमात्मा का जो वर्णन उन्होंने गीता में किया है वह एक योगी ही कर सकता है। कितना सारगर्भित लिखा है कि- इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गला सकता है और न वायु सुखा सकता है। यह न कटने वाला, न जलने वाला, न गलने वाला और न सूखने वाला है। यह नित्य , स्थिर, अचल और सनातन है। आत्मोत्थान के लिए मानव को निरन्तर कार्य करना चाहिए। वह काम, क्रोध और लोभ तीनों को नरक का द्वार बताते हैं जो आत्मा का विकास रोक देते हैं। उन्होंने गीता में शारीरिक तप, वाणी के तप, और मन के तप का वर्णन भी किया है।

श्रीकृष्ण महाराज की तीव्र बुद्धि शारीरिक पराक्रम, गूढ नीति और यथायोग्य ब्रर्ताव भी उनके योगी होने का प्रबल प्रमाण है। प्राणायाम के द्वारा जब व्यक्ति अपनी शक्ति का संग्रह करके किसी शत्रु पर प्रहार करता है तो वह बड़े से बड़े पहलवान को भी धराशायी कर देता है। कंस के चाणूर और मुष्टिक महाबली पहलवानों को पराजित करना और मौत के घाट उतारना श्री कृष्ण के महाबली होने का प्रमाण था। यह शक्ति ब्रह्मचर्य, योग और तप की है। उन्होंने जीवन में प्रत्येक कार्य बुद्धिपूर्वक किया है। आततायी कंस व जरासन्ध से लेकर जितने भी दुष्टों का नाश उन्होंने कराया है। उन सब में उनकी बुद्धि का ही चमत्कार दिखाई पड़ता है। संयमी और योगाभ्यासी ही ऐसी बुद्धि को प्राप्त कर सकता है।

श्रीकृष्ण महाराज एक महान् तपस्वी और योगी थे। उनको रसिक, गोपियों के साथ नाचने वाला, चोर आदि बताना उनके उज्जवल और पवित्र जीवन के साथ अन्याय है, उनकी तपस्या को कलंकित करना है। जिस रूप में आज श्रीकृष्ण महाराज की पूजा की जाती है, श्रीकृष्ण के नाम पर रासलीलाएं की जाती हैं, श्रीकृष्ण का वेश बनाकर लड़कियों के साथ नचाया जाता है, उन्हें चोरी करते हुए दिखाया जाता है वह अत्यन्त घृणित है। जिसने अपने प्रत्येक कार्य में आदर्शों को स्थापित किया है, प्रत्येक कार्य के द्वारा लोगों को कर्त्तव्य मार्ग पर चलने का संदेश दिया है उसके चरित्र को चोर, कामी, लम्पट के रूप में वर्णन करना उनके साथ अन्याय है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि-देखो श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरूषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में योगीराज श्रीकृष्ण महाराज का कितना मान था यह उनके विचारों से जाना जा सकता है। श्रीकृष्ण के इस उज्जवल और पवित्र जीवन की धवल कीर्ति को चारों ओर फैलाएं यह हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

thearyasamaj.org

आदर्श गुणों की खान-श्री कृष्ण

ले०—श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

भगवान श्रीकृष्ण एक ऐसे महापुरूष थे जिनमें इतने गुण पाए जाते हैं जिनका जितना वर्णन किया जाए उतना ही थोड़ा है। वह एक गृहस्थी होते हुए भी एक महान् कर्मयोगी थे। उन्होंने अपने गृहस्थ धर्म का पूरी तरह से पालन किया। कर्म करने में उनका पूरा विश्वास था, फल की इच्छा में नहीं। उन्होंने अपने जीवन में जो भी कार्य किया परहित की भावना से किया। गोकुल में रहते हुए वह केवल अपने पालक नन्द के लिए ही नहीं बल्कि सभी गोकुल निवासियों के लिए कार्य करते रहे हैं। कंस को मारकर उन्होंने मथुरा का राज्य भी स्वयं नहीं लिया परन्तु परहित के लिए उन्होंने कंस की मृत्यु के बाद जरासन्ध द्वारा उत्पन्न की गई स्थिति को देखते हुए मथुरा को भी छोड़ दिया। जब पाण्ड़वों को खाण्ड़व वन दे दिया गया और वह यह विचार कर रहे थे कि वन को कैसे आबाद किया जाए तब श्रीकृष्ण ने उन्हें कर्म करने की प्रेरणा दी और उनकी प्रेरणा से पाण्ड़वों ने जंगल में मंगल कर दिया। जब युद्ध के समय दोनों सेनाएं आमने सामने खड़ी हो गई और अर्जुन, भीष्म, द्रोण आदि के साथ युद्ध करने से इन्कार कर देता है तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा देने हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करने की प्रेरणा दी।

श्रीकृष्ण धर्म के तत्त्व को जानते थे और प्रत्येक कर्म को ज्ञानपूर्वक करते थे और दूसरों को भी इसकी प्रेरणा देते थे। वह पाण्ड़वों का दूत बनकर दुर्योधन को समझाने का प्रयास करते है और जब दुर्योधन स्पष्ट कह देते हैं कि वह युद्ध के बिना सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं है तब श्रीकृष्ण जी दुर्योधन को स्पष्ट कह देते हैं कि तुम्हारा यह कर्म राज्य को मिट्टी में मिला देगा। इसका परिणाम बहुत भयंकर होगा। तुम बुद्धिपूर्वक विचार करो,क्यों हस्तिनापुर को वीरान कराना चाहते हो।

श्रीकृष्ण का जीवन ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय है। वह महान् योद्धा, ज्ञानी और विद्वान् थे। तभी तो उन्होंने गीता के माध्यम से उपनिषदों का ज्ञान दिया। भगवान श्रीकृष्ण एक महान् योगी थे और उन्होंने गीता के माध्यम से इसका सन्देश जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया। जहां उन्होंने कर्म, भक्ति, ज्ञान और धर्म के तत्त्वों का प्रचार और प्रसार किया वहां राजनीति के तत्त्वों का भी विवेचन किया। वह सारे भारत को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। उस समय भी भारत में छोटे-छोटे राजा थे जो आपस में लड़ते रहते थे। उन्होंने शक्तिशाली पाण्ड़वों के माध्यम से सभी राजाओं को एक बार अपनी नीति के सूत्र में बांध दिया था। पाण्ड़वों के राजसूय यज्ञ को सफल बनाने वाले भी वही थे। जरासन्ध जैसे शक्तिशाली राजा को उन्होंने अपनी नीति के द्वारा ही मौत के घाट उतरवाया था। शिशुपाल जैसे अहंकारी राजा को उन्होंने बड़ी नीति से स्वयं ही समाप्त कर दिया था। वह युद्ध नहीं चाहते थे परंन्तु दुर्योधन की राज्य प्राप्ति की लालसा ने उनके सारे किए कराए पर पानी फेर दिया। वह प्रसन्न थे कि पाण्ड़वों का राजसूय यज्ञ सफल हो गया और भारत एकसूत्र में बन्ध गया परन्तु उनको क्या पता था कि धृतराष्ट्र और दुर्योधन स्वार्थ में इतना अन्धे हो गए हैं कि वह सभी कुछ चौपट करके रख देंगे।

आखिर कौरवों और पाण्ड़वों को जब वह युद्ध करने के लिए खड़ा पाते हैं और यह समझते हैं कि पाण्ड़वों के साथ अन्याय हो रहा है वह तब अपनी नीति से ही अर्जुन के सारथि बन जाते हैं और निपुणता से भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ और दुर्योधन को भी मरवा देते हैं। महाभारत के सारे युद्ध में श्रीकृष्ण की नीति दिखाई देती है। कौरव पक्ष में इतने बड़े-बड़े योद्धा थे कि पाण्ड़व पक्ष में उनका मुकाबला करने के लिए अर्जुन के सिवाय कोई योद्धा उपस्थित नहीं था। दादा भीष्म पितामह, अर्जुन को धनुर्विद्या सिखाने वाले द्रोणाचार्य भी उनके सामने थे परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी नीति निपुणता के द्वारा इन सबको मौत के घाट उतार दिया। इस युद्ध में धर्म की विजय तो हुई परन्तु यह विजय बहुत मंहगी पड़ी। देश के बड़े-बड़े योद्धा महान् विद्वान् तपस्वी और ज्ञानी लोग भी इस युद्ध की आग से भी न बच सके। इस युद्ध ने भारत को बहुत पीछे धकेल दिया परन्तु इसके सिवा कोई रास्ता नहीं था।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

thearyasamaj.org

महाभारत के श्रीकृष्ण

ले०—श्री सुधीर शर्मा कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

अपने महापुरूषों के चरित्र को बिगाड़ कर प्रस्तुत करने की कला यदि किसी से सीखनी हो तो वह तथाकथित हिन्दू जाति से सीखे। यदि किसी महापुरूष के चरित्र के साथ अन्याय हुआ है तो वह योगेश्वर श्रीकृष्ण ही है। श्रीकृष्ण के चरित्र को कलंकित करने और लांछित करने में कोई संकोच नहीं किया गया। जिस निष्कलंक एवं निर्दोष चरित्र के लिए महर्षि दयानन्द ने लिखा था कि- देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरूषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दहीं, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी पर लगाए हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा किया करते हैं। जो यह भागवत नहीं होता तो श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की निन्दा क्योंकर होती। और जिस निर्दोष व्यक्तित्व के लिए बंकिम चन्द्र ने लिखा है कि- उनके जैसा सर्वगुणान्वित और सर्वपाप रहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है।

महाभारत के श्रीकृष्ण के चरित्र की पावनता की पुष्टि इन दोनों के विचारों ने एकस्वर में की है और यह यथार्थ भी है। महाभारत में श्रीकृष्ण का आदर्श चरित्र चित्रित है। वहां उन्हें अत्यन्त संयमी, सर्वगुणसम्पन्न महामानव चित्रित किया गया है। आज जो गोपियों के साथ नाचने के, रासलीला रचाने के, स्नान करती स्त्रियों के वस्त्र चुराने के माखन चोरी करने के प्रसंग देखने को मिलते हैं उनका महाभारत में लेषमात्र भी आभास नहीं होता। महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण एक पत्नीव्रती थे और वह भी अत्यन्त संयमी। एक इकलौते पुत्र की प्राप्ति के लिए उस दम्पति ने 12 वर्ष का घोर तप किया था तब जाकर प्रद्युम्न जैसे पुत्र रत्न को प्राप्त किया था। ऐसा संयमी व्यक्ति चोरजार और रसिक कैसे हो सकता है। जिस राधा का नाम श्रीकृष्ण के साथ जोड़ दिया गया है उसका सम्पूर्ण महाभारत में कहीं भी वर्णन नहीं है। सम्पूर्ण महाभारत श्रीकृष्ण की गौरवगाथा का गान कर रहा है। यदि महाभारत से श्रीकृष्ण को अलग कर दिया जाए तो महाभारत में शेष कुछ नहीं बचता। महाभारत में श्रीकृष्ण के जीवन में आर्यत्व के दर्शन होते हैं। विद्यार्थी के रूप में, गृहस्थी के रूप में, राजा के रूप में, योद्धा के रूप में, मित्र के रूप में सभी में आदर्श मानदण्डों को स्थापित किया है। तभी युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर सर्वश्रेष्ठ एवं पूज्य व्यक्ति के रूप में उन्हें अर्घ्य दिया गया। युधिष्ठिर के पूछने पर कि सबसे पूर्व अर्घ्य किसे दिया जाए, भीष्म जी ने श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते हुए कहा कि इस विराट् सभा में जहां समस्त भारत के सुविख्यात ब्राह्मण, धुरन्धर विद्वान्, वेदों के मर्मज्ञ, युद्धविद्या विशारद, शूरवीर क्षत्रिय, वीर राजा और महाराजा उपस्थित हैं, उन सबमें श्रीकृष्ण ही सबसे बढ़कर हैं। ये वेद वेदांगों के मर्मज्ञ हैं ही, बलशाली भी सबसे अधिक हैं। दान, दक्षता, शास्त्रज्ञान, शौर्य, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि सभी सद्गुण श्रीकृष्ण में नित्य विद्यमान हैं। ये सभी राजाओं में अपने तेज बल और पराक्रम से उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं जैसे नक्षत्रों में सूर्य, अतः ये ही अर्घ्य के उपयुक्त पात्र हैं।

यह हैं महाभारत के श्रीकृष्ण किन्तु आज यह स्वरूप कहां तिरोहित हो गया है? आज पुराणों के श्रीकृष्ण ही सर्वत्र दिखाई देते हैं। महाभारत के अनुसार श्री कृष्ण के चरित्र का चित्रण करने पर तो कोई सहसा विश्वास नहीं करता। मनुष्य अपने गुणों के द्वारा उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचकर किस प्रकार एक साधारण व्यक्ति से महामानव एवं युगपुरूष के उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है, इसका श्रेष्ठ उदाहरण श्रीकृष्ण का जीवन है। कारागार की विवशतापूर्ण परिस्थितियों में जन्म लेकर भी कोई मनुष्य संसार का महत्तम नेता बन सकता है, यह कृष्ण का चरित्र देखने से स्वतः ही विदित हो जाता है। श्रीकृष्ण अपने इन्हीं गुणों के कारण आज भी कोटि-कोटि मानवों की श्रद्धा और निष्ठा के पात्र ही नहीं प्रेरणास्रोत भी बने हुए हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण जी महाराज ऐसे ही महापुरूष थे।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

thearyasamaj.org

ऋषि दयानन्द और श्री कृष्ण

ले०—श्री अशोक पख्थी रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पंजाब

ऋषि दयानन्द ने भारतीय सत्य सनातन धर्म का रूप प्रत्यक्ष किया। वेदों पर आधारित उस रूप का मन्थन किया, मनन किया और सारी आयु उसका ही प्रचार किया। उस सत्य सनातन धर्म के अन्तर्गत वेद हैं, उपनिषद हैं, आर्ष ग्रन्थ हैं और जीवन के घटक महापुरूषों की एक लम्बी परम्परा है। उस महान् परम्परा के धन्य श्री राम और श्री कृष्ण हैं यह हो ही नहीं सकता था कि ऋषि दयानन्द भगवान् श्री कृष्ण के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट न करते।

भगवान् श्री कृष्ण का नाम हिन्दू मानस में पूर्ण रूप से व्याप्त है। उनका जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक बहुत अधिक लौकिक तथा अलौकिक घटनाओं द्वारा बुना गया है। न जाने कितने चमत्कारिक प्रसंगों की उद्भावना हो चुकी है और अभी हो रही है। भारतीय साहित्य का कोई अंग, काव्य, नाटक, गद्य, पद्य ऐसा नहीं जो भगवान् श्री कृष्ण से अनुप्राणित न हो।

ऋषि दयानन्द वस्तुत: ऋषि थे। वे लगातार सत्य दर्शन के लिए प्रयत्नशील रहे। उनकी श्रद्धा का केन्द्र केवल परमात्मा की पवित्र वेदवाणी थी। इसके अतिरिक्त सभी शास्त्रों को, सिद्धान्तों को, क्रियाकलापों को और युगपुरूषों के जीवन को वे तर्क की कसौटी से परखते थे। परमात्मा ही उनके लिए एक जगनियन्ता और स्रष्टा था, शेष सब जीव अल्पज्ञ तथा मर्यादित शक्तियों के स्वामी थे। ऋषि दयानन्द को इतना समय नहीं मिला कि वे एक-एक महापुरूष के जीवन का निरीक्षण करते परन्तु उन्होंने अपना सूक्ष्म दृष्टिकोण सब महापुरूषों के विषय में दे दिया है और उसे पल्लवित करने का कार्य आर्य जनों के लिए छोड़ दिया है।

भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों में कोई जन्म लीला के चमत्कारों पर मुग्ध है, कोई बाल गोपाल के खेलों का रहस्य खोलता है, कोई रासलीला रचाकर उसका वर्णन करता है, कोई उसे राधा के साथ जोड़कर उसकी पूजा करता है, कोई गोपियों के साथ नचाकर नाचते-गाते हुए उसे मानते हैं और कोई गीता योग के चक्रव्यूह में मुग्ध होकर भटक रहा है। पर ऋषि की दिव्य दृष्टि ने कृष्ण के विलक्षण शौर्य सम्पन्न और राजनीति निष्णान्त राष्ट्र पुरूष रूप को परखा और देखा।

जैसे चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का विकास कर एक विशाल भारतीय राष्ट्र का निर्माण किया था जिसकी सीमाएं नर्मदा से लेकर कन्धार तक विस्तृत थी, ठीक इसी प्रकार भगवान् श्री कृष्ण एक विलक्षण राष्ट्र पुरूष थे। उन्होंने पांच पाण्डवों का विकास किया। क्षय रोग ग्रस्त पिता की वन भ्रमण के समय मृत्यु हो गई। माद्री पति के साथ सती हो गई। माता कुन्ती को लेकर जब पाण्डु पुत्र हस्तिनापुर पहुंचे तो धृतराष्ट्र राजा थे और उनका परिवार राज्य का आनन्द ले रहा था। राज्य के वैभव को सरलता से कौन छोड़ता है? अपने आप आपद् ग्रस्त, मथुरा छोड़कर द्वारिका में बसे कृष्ण ने लगभग एक सहस्र मील दूर हस्तिनापुर में राजनीति का ऐसा चक्र चलाया कि वही पाण्डुपुत्र एक महान् राष्ट्र के अधिनायक बन गए। सम्पूर्ण महाभारत युद्ध में कृष्ण ने कहीं भी शस्त्र नहीं उठाया। युद्ध के बाद अश्वमेध यज्ञ में आसाम से लेकर गान्धार तक के राज वंशों को एक सूत्र में गूंथ कर महाभारत की विशाल कल्पना साकार की गई।

इस विशाल राष्ट्र निर्माण के कार्य का आधार केवल कृष्ण थे। शेष भीष्म पितामह से लेकर सभी उनके हाथ की कठपुतलियां थे। सम्पूर्ण महाभारत का आधार कृष्ण थे। वह कृष्ण जो अवतार नहीं, चमत्कारों से, दैवी माया से घिरा कृष्ण नहीं, अपितु अपूर्व राजनीति, राष्ट्रनीति, और धर्मनीति के पारंगत राष्ट्र पुरूष भगवान् श्रीकृष्ण।

ऋषि की दिव्य दृष्टि के सामने भगवान् कृष्ण का वह दिव्य रूप था। इस विशुद्ध दिव्य रूप का साक्षात्कार ऋषि ने सैकड़ों वर्षों से प्रचलित अनेकों परम्पराओं के आधारभूत सौंदर्यपूर्ण, रहस्यपूर्ण, लीलामय, चमत्कार रूपों के सघन वन में किस प्रकार किया? यह अपने आप में एक चमत्कार है।

गुरू विरजानन्द से प्राप्त आर्ष अनार्ष साहित्य के रहस्य ने ऋषि को प्रारम्भ में भागवत से अलग कर दिया। भागवत् में श्रीकृष्ण के असली स्वरूप को बिगाड़ कर उसे विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके जीवन के साथ अनेक अकल्पनीय घटनाओं को जोड़ दिया गया है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के 11वें समुल्लास में यह प्रसंग है:- 1. देखो! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरूषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। 2. जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण के सदृश महात्माओं की निन्दा क्योंकर होती? 3. जब सम्वत् 1914 में तोपों से मन्दिर की मूर्तियां उड़ा दी थी तब मूर्ति कहां गई थी? प्रत्युत बार्घर लोगों ने जितनी वीरता की और बड़े शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्ति एक टांग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्ण सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने भागवत् का अनार्ष ग्रन्थ के रूप में विरोध तो प्रचार कार्य में आते ही प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए उस पर चिंतन करते हुए हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम श्री कृष्ण के महाभारत में वर्णित शुद्ध चरित्र को ही अपने जीवन में अपनाएं। भागवत में वर्णित श्री कृष्ण के विकृत स्वरूप का बहिष्कार करें। श्री कृष्ण के चरित्र की जो विकृत भावना आम जनता के बीच में बन गई है उसे दूर करने का प्रयास करें। श्री कृष्ण के श्रेष्ठ गुणों को याद करते हुए, उन्हें अपने जीवन में धारण करते हुए श्री कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाएं।

thearyasamaj.org

ईश्वरोपासक श्री कृष्ण

ले०—श्री सुरेश शास्त्री सभा कार्यालय जालन्धर

सृष्टि रचयिता की सत्ता पर विश्वास तथा उसके शुद्ध और सत्य स्वरूप का ज्ञान कराने वाली उस परमदेव की कल्याणी वेद वाणी पर आस्था एवं निष्ठा रखते हुए उसके अनुसार अपने गुण, कर्म और स्वभाव को सुधारना ही सच्ची आस्तिकता है। इस प्रकार अपने जीवन को दूसरों को सुधारने में लगा देना आस्तिकता के उस भाव को प्रचारित करता है। योगीराज श्रीकृष्ण में यह दोनों गुण उपलब्ध होते हैं। प्रभु के उपासक श्री कृष्ण प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर परमपिता परमात्मा का चिन्तन और मनन योगारूढ़ होकर किया करते थे।

गीता में अर्जुन के समक्ष परमपिता परमात्मा के ध्यान की रीति का वर्णन करते हुए श्री कृष्ण वेदानुमोदित उपासना विधि को छठे अध्याय के 11,12,13 वें श्लोक में कहते हैं–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नाति नीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

अर्थात् स्वच्छ स्थान पर अपना स्थिर आसन बिछाकर, ऐसी जगह जो न अधिक ऊँची हो, न अधिक नीची हो और आसन पर पहले कुशा, फिर मृगछाला और उस पर वस्त्र बिछाकर, वहां मन को एकाग्र कर चित्त और इन्द्रिय की क्रियाओं को रोककर, आसन पर बैठकर आत्म शुद्धि अर्थात् अन्तःकरण या मन की शुद्धि के लिए योग में जुट जाएं। अपनी पीठ, सिर और गर्दन को सीधा अर्थात् एक सीध में तथा अचल रखकर स्थिर होते हुए, नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य किसी दिशा में न देखता हुआ योग का अनुष्ठान अर्थात् प्रभु का चिन्तन करें।

आस्तिक और प्रभुभक्त श्री कृष्ण सायं प्रातः नियत समय पर सन्ध्या और अग्निहोत्र किया करते थे। इसका वर्णन महाभारत में अनेक स्थलों पर मिलता है। पाण्ड्व तेरह वर्ष का वनवास समाप्त करके जब वापिस आए तो श्री कृष्ण पाण्ड्वों के दूत बनकर दुर्योधन को समझा बुझाकर सन्मार्ग पर लाने और पाण्ड्वों को उनका न्याय भाग दिलाने के हस्तिनापुर के लिए चले। मार्ग में सायंकाल हो गया। सच्चा प्रभुभक्त, आस्तिक्य भावना से भरपूर प्रातः और सायंकाल समाप्त होने पर सभी कर्मों का परित्याग करके सन्ध्या वन्दना करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। श्री कृष्ण जैसा योगी, तपस्वी और प्रभुभक्त इस कर्त्तव्य से कैसे विमुख हो सकता था। महाभारत में लिखा है–

अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथ प्रमोचनमादिश्य सन्ध्यामुप विवेश ह।।

अर्थात् रथ से शीघ्र उतरकर और विधिवत् शौच कर्म से निवृत्त होकर तथा रथ को खोलने का आदेश देकर सन्ध्योपासना में बैठे। इस प्रकार महाभारत को पढने से ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण प्रभु के भक्त थे, नित्य प्रति सन्ध्या वन्दना किया करते थे। जो लोग उन्हें परमात्मा का अवतार मानते हैं उन्होंने कभी श्री कृष्ण के सच्चे स्वरूप को जानने का प्रयत्न नहीं किया।

उपास्य और उपासक में भेद होता है। उपास्य सर्वगुणण्सम्पन्न होता है और उपासक सीमित शक्ति वाला होता है। उपासक के अन्दर उपास्य के द्वारा ही दिव्य गुण और अलौकिक प्रतिभा आती है। श्री कृष्ण का नियमित रूप से सन्ध्यानुष्ठान और प्रभु का चिन्तन करना उनके उपासक होने का प्रबल प्रमाण है। परन्तु प्रश्न यह है कि श्री कृष्ण योगावस्था में अहर्निश जिस परमात्मा का ध्यान लगाया करते थे उसका स्वरूप क्या है। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए आठवें अध्याय के 9,10 वें श्लोक में श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं–

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।
प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरूषमुपैति दिव्यम्।।

अर्थात् जो व्यक्ति इस संसार से प्रस्थान के समय अचल मन से, भक्ति से सराबोर होकर और योग बल से भृकुटी के बीच में अच्छी तरह प्राण को स्थापित करके उस क्रान्त द्रष्टा, पुरातन, नियन्ता, अणु से भी अणु, सबके धारक और पालक, अचिन्त्य, सूर्य के समान तेजस्वी, अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म का स्मरण करता है वह उस प्रकाश स्वरूप दिव्य परम पुरूष को प्राप्त होता है। अगले श्लोक में श्री कृष्ण महाराज कहते हैं–

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।

अर्थात् वेदों के ज्ञाता जिस परब्रह्म को अक्षर नाम से पुकारते हैं, वीतराग यति लोग जिसका ध्यान लगाते हैं, ब्रह्मचारी जिसकी इच्छा के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, उस ओंकार पद को मैं तेरे लिए संक्षेप में वर्णन करूंगा। **(शेष पृष्ठ 6 पर)**

thearyasamaj.org

पृष्ठ 1 का शेष- महान् तपस्वी.....

आज समाज के सामने उनके उज्जवल जीवन का वर्णन करने की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियां और मत लोगों में फैले हैं उन्हें तभी दूर किया जा सकता है यदि उनका निष्कलंक जीवन लोगों के सामने आ जाए। पुराणों में लिखी गलत बातों को लेकर जो अपमान इस महापुरूष का किया जाता है उसका निराकरण करें। उनका प्रमाणिक जीवन लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। जितना इस महापुरूष के जीवन को कलंकित किया गया है उतना किसी का भी नहीं हुआ है।

आओ जनमाष्टमी के इस पवित्र पर्व पर सर्वगुणसम्पन्न इस महामानव का सच्चा चरित्र और स्वरूप सर्वसाधारण तक पहुंचाने का व्रत लें। उनके उज्जवल और निष्पाप जीवन से जनता को अवगत कराएं। उन्होंने जो असाधारण कार्य अपनी योगबुद्धि के द्वारा किए हैं, महाभारत में जो अपना आदर्श जीवन प्रस्तुत किया है, गीता के रूप में संसार को जो अलौकिक ज्ञान दिया है, अर्जुन को जो कर्त्तव्य पालन करने का पाठ पढाया है उन कार्यों से जनता को अवगत कराएं ताकि इस महामानव के सम्बन्ध में जो गलत धारणाएं समाज में फैली हुई हैं उन्हें दूर किया जा सके।

पृष्ठ 2 का शेष- आदर्श गुणों.....

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का जीवन जो महाभारत में देखने को मिलता है वह प्रेरणाओं और गुणों से भरपूर है। जनमाष्टमी का पर्व मनाते हुए हम उनके जीवन से शिक्षा लेने का प्रयास करें और उनके गुणों को अपने जीवन के अन्दर धारण करने का प्रयत्न करें। श्रीकृष्ण जनमाष्टमी का पर्व तो हम प्रतिवर्ष मनाते चले आ रहे हैं, परन्तु जो उन के गुण हैं उन गुणों को धारण करने का कभी प्रयत्न नहीं किया। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए जो कर्त्तव्य का मार्ग बताया है उस मार्ग पर चलने का कभी प्रयास नहीं किया। रासलीला रचाकर, श्रीकृष्ण का स्वांग बनाकर गोपियों के साथ नचाकर उनके उज्जवल और निष्पाप जीवन के साथ अन्याय ही किया है। इसलिए हम सब का कर्त्तव्य बनता है कि श्रीकृष्ण का जो जीवन महाभारत के नीतिवेत्ता के रूप में, आदर्श गुणी के रूप में, योगी और तपस्वी रूप में वर्णित किया है उसी रूप में हम उस महापुरूष का गुणगान करें। पुराणों में वर्णित असम्भव और अकल्पनीय बातों का खण्ड़न करके उनके आदर्श जीवन को जन-साधारण के बीच में वर्णित करें तभी हमारा जनमाष्टमी के पर्व को मनाना सार्थक हो सकता है।

पृष्ठ 3 का शेष- महाभारत के.....

विकट परिस्थितियों के आने पर प्रत्येक व्यक्ति उस परिस्थिति से निकलने के लिए जूझना चाहता है परन्तु स्वार्थ एवं भीरूता के कारण जूझ नहीं पाता। उस समय कोई महापुरूष होता है जो सबकी पीड़ा को अपने हृदय में खींच कर परिस्थिति की विषमता से लड़ने के लिए उठ खड़ा होता है। जब कोई ऐसा महापुरूष सामने आता है तब सभी के सिर उसके सामने श्रद्धा से झुक जाते हैं। महामानव श्रीकृष्ण ऐसे ही महापुरूष थे जिन्होंने सबकी पीड़ा को अपनी पीड़ा समझ लिया था। ऐसे महापुरूष को संसार ने समझने में बड़ी भूल की है। आज श्रीकृष्ण के ऐसे स्वरूप का वर्णन किया जाता है जिससे श्रीकृष्ण के सभी आदर्श गुणों का लोप हो जाता है। आज लोगों ने अज्ञानतावश महाभारत के आदर्श, नीतिवेत्ता श्रीकृष्ण को भूलकर पुराणों के कामी, लम्पट, रसिक और भोगी श्रीकृष्ण को अपना लिया है।

जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए आज हमें विचार करना होगा कि हमें किस प्रकार के श्रीकृष्ण की आवश्यकता है। महाभारत के आदर्श नीतिवेत्ता, परम तपस्वी, तेजस्वी, संयमी श्रीकृष्ण की आवश्यकता अथवा पुराणों के चोर, कामी, रासलीला रचाने वाले, गोपियों के संग नाचने वाले भोगी श्रीकृष्ण की आवश्यकता है। यदि हम अपने विवेक से ऐसा निर्णय कर सके तो श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाना सार्थक एवं सफल हो सकेगा।

पृष्ठ 5 का शेष- ईश्वरोपासक....

इससे स्पष्टत: सिद्ध होता है कि महाराज श्री कृष्ण अन्य वेदानुयायी ऋषि मुनियों के समान परमात्मा के मुख्य और निज नाम ओ३म् का ही स्मरण किया करते थे तथा योगारूढ़ होकर उसी का ध्यान लगाते थे। जगनियन्ता परमात्मा के स्वरूप, उसको प्राप्त करने की विधि क्या है इसका उत्तम ढंग से वर्णन श्री कृष्ण ने किया है। वे स्वयं उस अजन्मा, अकाय, सर्वव्यापक, निराकार और निर्विकार ओ३म् का ही ध्यान प्रात: सायं किया करते थे। उसी सर्वरक्षक परमात्मा की उपासना वे किया करते थे जिसे गीता में उन्होंने सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, दोषों से रहित, विकारों से रहित, दुखों से छूटा हुआ, सुखस्वरूप माना है।

अत: जनमाष्टमी का पर्व मनाते हुए हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम श्री कृष्ण के सम्बन्ध में फैली निराधार भ्रान्तियों को दूर करें। पुराणों द्वारा जो विकृत स्वरूप श्री कृष्ण का प्रस्तुत किया गया है उसका बहिष्कार करें। गोपियों के साथ नाचने वाले, रासलीला रचाने वाले, जिस कामी, भोगी और रसिक कृष्ण का जो चरित्र जन साधारण में प्रचलित है उसके स्थान पर आदर्श गुणों से सम्पन्न, योगीराज, नीतिवेत्ता, ईश्वर के उपासक, श्री कृष्ण का चरित्र जन साधारण में प्रस्तुत करें ताकि आम जनता को उनके आदर्श और प्रेरणादायक चरित्र का ज्ञान हो सके। इस पर्व को मनाते हुए श्री कृष्ण के प्रभुभक्त और एक ईश्वर के उपासक स्वरूप का गुणगान करें और उनके जीवन से प्रेरणा लें तभी हमारा जनमाष्टमी के पर्व को मनाने की सार्थकता है।

thearyasamaj.org

वैदिक धर्म व संस्कृति के स्तम्भ श्रावणी एवं योगेश्वर कृष्ण जन्माष्टमी पर्व

ले०—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

हमारे देश में चार प्रमुख पर्व मनाये जाते हैं जिनके नाम हैं श्रावणी, होली, दीपावली और दशहरा। हमारे देश-बन्धु संसार के प्रायः सभी देशों में बसे हुए हैं और वह भी अपने-अपने स्थानों पर इन पर्वों को श्रद्धा व हार्दिक भावना से मनाते हैं। इनमें श्रावणी पर्व ऐसा पर्व है जिसका नाम ही ईश्वरीय ज्ञान वेदों से जुड़ा हुआ है। वेदों का श्रवण किये जाने से वेदों का एक नाम श्रुति पड़ा है। वर्षा काल में हमारे कृषि प्रधान देश में कृषकों तथा अन्य लोगों के पास अवकाश रहा करता है। वर्षा के कारण बाहर आने-जाने में असुविधा रहती है। ऐसे समय में यदि घर पर रहकर वेदों का स्वाध्याय या आस-पास जाकर विद्वानों से वेदों के अर्थों का श्रवण किया जाये और उन पर चिन्तन व मनन कर उनकी शिक्षाओं के अनुरूप जीवन को ढ़ाला जाये तो यह जीवन की उन्नति, अभ्युदय व निःश्रेयस, के लिए लाभदायक होता है। अतः प्राचीन काल से ही वेदों के सर्वाधिक महत्व होने के कारण वेदों के अध्ययन के पर्व को श्रावणी का नाम देकर इसके लिए उपयुक्त समय वर्षाकाल में श्रावण मास का पूर्णिमा को चुना गया। इसी दिन हमारे गुरूकुलों में नये ब्रह्मचारियों का उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार करके उन्हें गुरूकुल में प्रविष्ट भी किया जाता है। हमारे पूर्वज वा ऋषियों के इन बुद्धि संगत निर्णयों के लिए हम उनके आभारी हैं। संसार में विभिन्न मत, मजहब व संस्कृतियों में जो पर्व मनाये जाते हैं उनमें से कहीं किसी में भी ज्ञानार्जन व तदनुसार आचरण को संवारने का श्रावणी जैसा कोई पर्व नहीं मनाया जाता। हम भारत के वैदिक धर्मी आर्य समाजी व महर्षि दयानन्द के अनुयायी लोग इस मामले में भाग्यशाली हैं कि हम वेदों के स्वाध्याय का पर्व श्रावणी के रूप में मनाते हैं और इस दिन कुछ नए संकल्प और व्रत धारण करते हैं।

श्रावण का महीना और इसकी पूर्णिमा के दिन मनाया जाने वाला पर्व श्रावणी पर्व सर्वत्र प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। श्रावणी पर्व के आठवें दिन योगेश्वर श्री कृष्ण का जन्मोत्सव पर्व कृष्ण जन्माष्टमी के नाम से मनाने की परम्परा है। आर्य समाज की स्थापना के बाद व वेदों के ज्ञान के प्रकाश में आर्य समाज के विद्वानों द्वारा पौराणिकों व सनातनियों द्वारा मनायें जाने वाले सभी पर्व, व्रत व उपवासों की समीक्षा व मीमांसा की गई. आर्य समाज में व्रत व उपवास का वह रूप नहीं है जो हमारे पौराणिक व सनातनी भाईयों व बहिनों में है। व्रत का अर्थ होता है कि शुभ कार्य को करने का संकल्प धारण करना और उसे पूरा करने के लिए सभी उचित उपायों को करके उसे सफल करना होता है। किसी दिवस विशेष पर भोजन न करना "व्रत" या "उपवास" की श्रेणी में नहीं आता। व्रत का एक पयार्यवाची शब्द प्रतिज्ञा दिखाई देता है। प्रतिज्ञा कुछ वचनों से जुड़ी होती है। जो बात कह दी उसे पूरा करना होता है। प्रतिज्ञा को पूरा करने में चाहे कितनी ही कठिनाईयों का सामना क्यों न करना पड़े, तो भी सभी कठिनाईयों को सहन करना होता है परन्तु वचन भंग नहीं होने दिया जाता, यही व्रत व संकल्प का वास्तविक स्वरूप है। अतः आर्य समाज पौराणिक बन्धुओं की भांति भूखे रहने को व्रत की संज्ञा दिए जाने को स्वीकार नहीं करता। इसलिए आर्य समाज के अनुयायी पूर्वजों, महात्माओं, महापुरूषों के जन्म आदि से जुड़ी तिथियों के दिन व्रत आदि नहीं रखते। उपवास भी पौराणिक मान्यताओं के अनुसार व्रत का ही पूरक है। पौराणिक मानते हैं उपवास वाले दिन को प्रातः एवं दिन में अन्न का भोजन नहीं करना। इसके स्थान पर वह जलीय पदार्थ चाय, जल, काफी, शीतल पेय, दूध, कुट्टू के आटे की रोटी, मावे के लड्डू व सभी प्रकार के फल आदि लेते या खाते हैं। उपवास का अर्थ ईश्वर के समीप रहना व स्वयं को ईश्वर के पास व उसके साथ अनुभव करना होता है। यह कार्य ईश्वर का ध्यान, चिन्तन, ओम् या गायत्री मन्त्र के जाप आदि से ही हो सकता है, निराहार रह कर नहीं। विचार करने पर पौराणिकों के व्रत व उपवास में कोई विज्ञान, तर्क, युक्ति, दर्शन, रहस्य आदि समझ में नहीं आते कि ऐसा करने से कैसे इष्ट की प्राप्ति होती है या हो सकती है। हमने यह भी पाया है कि पौराणिक व्रत व उपवास धन, सम्पत्ति, स्वास्थय, सन्तानों की शिक्षा, नौकरी, कारोबार में वृद्धि या सफलता व अन्य अनेक मनोरथों की पूर्ति व सिद्धि के लिए करते हैं। यह सब अल्पज्ञता, अन्धविश्वास व अज्ञानी गुरूओं की शिक्षा का परिणाम है। वह इसे आस्था कह सकते हैं परन्तु हमारी दृष्टि में यह सब आस्था नहीं अपितु अन्धविश्वास व अज्ञान ही है। जिस कार्य में सत्य न हो और उसे कोई करे तो

thearyasamaj.org

उसे आस्था नहीं अन्धविश्वास कहना या अन्धी आस्था कहना ही उचित है। इसी प्रकार का कृत्य मूर्ति पूजा भी है जिसे आस्था न कहकर अज्ञानता व अन्धविश्वास कहना ही उपयुक्त व समीचीन है। हम यह समझते है कि ईश्वर विषयक आध्यात्मिक ज्ञान संसार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण, उपयोगी, आवश्यक व पवित्रतम है और इससे जुड़ा हुआ होने से श्रावणी पर्व अन्य सभी पर्वों से सबसे अधिक महिमाशाली, महत्वपूर्ण व जीवनोद्देश्य को पूर्ण करने वाला है।

आईये अब विचार करें कि श्रावणी पर्व किन प्रयोजनों व उद्देश्यों से मनाया जाता है। श्रावणी पर्व श्रावण के महीने में पूर्णिमा के दिन मनाया जाने वाला पर्व है। श्रवण शब्द से श्रावण का महीना बना है। श्रुति के अर्थ, वेद, उनका श्रवण, विचार, चिन्तन, मनन, स्वाध्याय, अध्ययन व प्रवचन आदि की परम्परा सृष्टि के आदि से हमारे देश में रही है। उसी को पर्व का रूप दिया गया है। जिससे कि जो लोग अति व्यस्ताओं के कारण वेदों का नियमित स्वाध्याय व अध्ययन न कर पा रहे हों, वह इस श्रावण के महीने में अवश्य ही समय निकाल कर वेदों का स्वाध्याय करें, प्रवचन सुनें और वेदों का स्वयं भी प्रचार करें। इसी महत्व के कारण देश व विदेशों में सर्वत्र आर्य समाज द्वारा श्रावणी से जन्माष्टमी तक के 9 दिनों में अग्निहोत्र-यज्ञ, वेद पारायण यज्ञ, वैदिक भजनों व गीतों तथा वेद कथा व प्रवचन आदि का आयोजन किया जाता है। वेद कथा से तात्पर्य वेदों की मान्यताओं व सिद्धान्तों को समझाने के लिए प्रवचनों में सरल उदाहरणों द्वारा श्रोताओं को उन्हें समझाया, सिखाया व उनसे सहमत कराया जाता है। इस अवसर पर महर्षि दयानन्द के वैदिक साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों के प्रवचन सुनकर हम वेदों के स्वाध्याय की प्रेरणा ग्रहण कर उसे अपने जीवन में ढालने का व्रत लेते हैं।

हमारे पूर्वज बहुत बुद्धिमान थे। उनका प्रत्येक निर्णय व कार्य बहुत सोच-विचार कर युक्ति व विवेक पूर्ण होता था। उन्होंने चिन्तन किया कि वर्ष में 12 महीने होते हैं और 6 ऋतुओं में से शरद्, ग्रीष्म व वर्षा ऋतु मुख्य हैं। ग्रीष्म व शरद ऋतु में सभी प्रकार के कार्य किये जा सकते हैं परन्तु वर्षा ऋतु में सामान्य जीवन कुछ अस्त-व्यस्त सा रहता है। अतः वर्षा ऋतु में अवकाश का उपयोग धार्मिक साहित्य एवं वेदों के अध्ययन के लिए उपयुक्त होता है। श्रावण व भाद्रपद के महीनों में अधिक वर्षा होती है जिससे हमारे पूर्वजों ने इन दो महीनों के बीच के दिन श्रावण पूर्णिमा को श्रावणी पर्व के रूप में निर्धारित किया। इन दो महीनों में यदि हम अन्यान्य कार्यों से समय बचाकर उसे मुख्यतः स्वाध्याय, चिन्तन, मनन व ईश्वर के ध्यान आदि में लगाते हैं तो इससे हमारी आत्मा में ईश्वर का ज्ञान व उसका विश्वास वृद्धि को प्राप्त होगा जो हमें भावी जीवन में दुरित कार्यों व विचारों से बचा कर वर्तमान के हमारे जीवन एवं मृत्यु के पश्चात के जीवन को संवार सकता है। यहां हम देखते हैं कि जब अंग्रेजी संस्कारों वाले अपने युवकों व युवतियों से परजन्म अर्थात् इस जीवन के पश्चात के पुनर्जन्म या जीवन की बात करते हैं और यह कहते हैं हमारा भावी जन्म हमारे इस जन्म के कर्मों के आधार पर ईश्वर निर्धारित करता है तो, इसके अदृष्ट होने के कारण, किसी को इसका विश्वास नहीं होता। यदि हम उल्टा विचार करें तो सम्भवतः हमें समझ में आ सकता है। एक नये बच्चे ने जन्म लिया। बच्चे में छोटा सा शरीर पार्थिव पदार्थों मुख्यतः पृथिवी, अग्नि, जल, वायु व आकाश के संयोग से बना अन्नमय शरीर है तथा उसमें एक चेतन आत्मा है। वह चेतन आत्मा माता के शरीर में कब, कहां से व कैसे आया और सन्तान के शरीर से जुड़कर व उसमें प्रवेश कर उसकी उपस्थिति में शिशु का शरीर माता के गर्भ में विकसित हुआ, वह कैसे हुआ ? हम देखते हैं कि बचपन में भी हमारा आत्मा वही होता और युवावस्था तथा वृद्धावस्था में भी वही रहता है। हमें बचपन की बहुत सी बातें याद रहती हैं जो इस बात का प्रमाण है कि बचपन वाली आत्मा ही आज भी हमारे अन्दर है और वही हम है। यदि यह भी शरीर की भांति संयोगजन्य व सावयव होती तो उसके नये पदार्थों के सेवन से बदल जाने से कुछ भी याद न रहता। इससे सिद्ध है कि शरीर में एक अविनाशी चेतन तत्व आत्मा है जो किसी अदृश्य सत्ता व व्यवस्था से हमारे शरीर में प्रवेश होती है और प्राकृतिक नियमों के अनुसार उसका जीवन चलता है। यह आत्मा कहां से आता है ? इसके लिए हमें समाज व देश में प्रतिदिन मृत्यु को प्राप्त होने वाले लोगों पर ध्यान देना होगा। वह मरते क्यों हैं और मर कर कहां चले जाते हैं ? इसका उत्तर है कि सर्वव्यापक ईश्वर मृतकों की आत्माओं को अपनी व्यवस्था व सामर्थ्य से शरीरों में से निकालता है और वहीं परमात्मा मृतक की गई उस व उन सब आत्माओं को भावी पिता के शरीर व उसके बाद उसे माता के शरीर में उसके पूर्व जन्म के प्रारब्ध व कर्मों के आधार पर स्थापित कर जन्म देता है। हमने जो उत्तर दिया है वहीं एक मात्र उत्तर है जो तर्क संगत है। इससे अधिक सन्तोषप्रद और कोई उत्तर आज तक दे ही नहीं पाया। हां, वितण्डा करने वाले अज्ञानी व स्वार्थी लोगों की कमी नहीं है। यह उत्तर हमारा अपना नहीं है अपितु वेदों की परम्परा व ऋषि परम्परा से प्राप्त उत्तर है जिसे अस्वीकार करने का कोई प्रश्न ही नहीं, जबकि हम इससे पूर्व सन्तुष्ट व आश्वस्त हैं। इस जीवात्मा को इस मनुष्य जीवन में अच्छे कर्म कर, वेदों

thearyasamaj.org

का ज्ञान प्राप्त करके, वेदानुसार जीवन व्यतीत कर, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति करनी है। इसके लिए हमारे सामने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जीवन साक्षात उदाहरण है। हमें अन्य ग्रन्थों के स्वाध्याय के साथ नित्य प्रति स्वामी दयानन्द जी के पं. लेखराम, स्वांमी सत्यानन्द, पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, मास्टर लक्ष्मण आर्य, श्री हरविलास शारदा आदि रचित जीवन चरितों को अध्ययन करना है व महर्षि के जीवन से प्रेरणा लेकर वैसा ही व्यवहार या अनुकरण करना है जिससे हमें मोक्ष प्राप्त होकर अनेक जन्मों से चली आ रही हमारी मोक्ष प्राप्ति की यात्रा को विराम व आश्रय मिल सके अन्यथा हमें भिन्न-भिन्न योनियों में कर्मानुसार जन्म धारण कर दुःख भोगने होगें। हमारे मित्रों के यह विचार व व्यवहार कि यह सब असत्य हैं, हमें उन भावी दुःखों व नाना प्राणियों की योनियों में जन्म लेने से बचा नहीं सकेगें। यहां यह कहना है कि 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब, पल में प्रलय होइगी, बहुरि करेगा कब ?'

श्रावणी पर्व के दिन बृहत यज्ञ का आयोजन अपने निजी परिवार में व सार्वजनिक स्थान आर्य समाज आदि में किया जाना चाहिये व किया भी जाता है, उसमें सबको सम्मिलित होकर धर्म लाभ प्राप्त करना चाहिये। यहां यह भी कहना है कि यज्ञ कर लेने मात्र से श्रावणी पर्व समाप्त नहीं हो जाता अपितु यह तो हर क्षण, हर दिन, प्रत्येक सप्ताह, माह व वर्ष भर ही नहीं सारा जीवन चलने वाला पर्व है। ऐसी भूल नहीं करनी चाहिये कि अब श्रावणी पर्व समाप्त हो गया और अब अगले वर्ष इसको यज्ञ व प्रवचन आदि के द्वारा मनाना है। अगले वर्ष जब यह दिवस आयेगा तो हमें परीक्षा व विचार कर देखना होगा कि हमने विगत वर्ष जो श्रावणी पर्व मनाया था, क्या उसके अनुसार स्वाध्याय, सन्ध्या, हवन व महर्षि दयानन्द के जीवन चरित और अन्य ग्रन्थों का नियमित स्वाध्याय व अध्ययन तथा उस पर आचरण जारी रखा है या नहीं ? यदि कहीं कोई कमी रह गई हो तो उसे तब दूर करना, उसे अपनी डायरी में नोट करना और वर्ष भर उसे देखते रहना कि हमारा जीवन उसके अनुरूप व्यतीत हो रहा है या नहीं, आवश्यक है। श्रावणी पर्व के दिन बहनें अपने भाईयों की कलाई पर राखी बांधती है। कुछ लोग अपने पूर्व के यज्ञोपवीत उतार कर नये धारण करते हैं, इन दोनों परम्पराओं को जारी रखने से क्योंकि सिद्धान्त की कोई हानि नहीं है, अतः इसे मनाने व करने में कोई बाधा नहीं है।

श्रावणी के बाद आठवें दिन भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हम लोग कृष्ण जन्माष्टमी पर्व मनाते हैं। इसको मनाये जाने का उद्देश्य है कि योगेश्वर श्री कृष्ण विश्व के इतिहास में कुछ अपूर्व महापुरूषों में से एक हैं। वह हमारे एवं सारे विश्व के मानवों के लिए प्रेरणा के स्त्रोत व सबके आदर्श हैं। उनका महाभारत के अनुसार, न कि पुराणों के अनुसार, जीवन चरित को पढ़ना, विद्वानों से उनके जीवन के प्रेरक प्रसंग सुनना व उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ करना इसका इस पर्व को मनाने का उद्देश्य है। श्री कृष्ण जी योगी, युद्धास्त्र सुदर्शन चक्र धारी, वीर, साहसी, बलवान, पराक्रमी, देशभक्त, प्राणीमात्र के हितैषी, ईश्वरभक्त, वेदभक्त, ऋषिभक्त, सत्य के पोषक व रक्षक, गोभक्त, गोरक्षक, गोसंवर्धक, सत्याचारी, देशहित को सर्वोपरि मानने वाले, मर्यादाओं के पालक व देश काल परिस्थितियों के अनुसार यथोचित मर्यादाओं के जनक, दुष्टों का दमन करने वाले, अंहिसा के पुजारी, अनावश्यक हिंसा के विरोधी, वैदिक धर्म के अनुसार शासन करने वाले राजा तथा वैसा ही शासन व राज्य सारे देश में स्थापित करने का स्वप्न देखने वाले, कर्मठ, पुरूषार्थी, युद्धकला में प्रवीण, योद्धा, अन्यायकारियों के बल का नाश और उन्हें दण्ड देने वाले, सज्जन व धार्मिक लोगों का सम्मान करने वाले, महाबुद्धिमान, देवियों व स्त्री जाति का सम्मान करने वाले, स्त्रियों के रक्षक, शत्रु नाशक, महात्मा, माता-पिता, गुरूओं व विद्वानों के आज्ञाकारी, मित्रों के मित्र, वैदिक धर्मी, वेदानुयायी, सन्ध्या व अग्निहोत्र करने वाले महान पुरूष थे। उनके इन गुणों व इसी प्रकार के अन्य गुणों के साथ उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का स्मरण कर उसे अपने जीवन में धारण करना चाहिये और उनकी स्मृति में वेदों के अनुसार महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट पद्धति से यज्ञ भी करना चाहिये तभी इस पर्व को मनाने की सार्थकता है। यहां यह भी स्पष्ट कर दें कि कृष्ण जी उपर्युक्त गुणों से युक्त एक महात्मा व महापुरूष थे परन्तु ईश्वर का अवतार कदापि नहीं थे और न ईश्वर का अवतार होता है या हो सकता है। संसार को बनाने व चलाने वाला ईश्वर तो अजन्मा व अमर है। यजुर्वेद में कहा गया है कि ईश्वर वह है जो नस-नाड़ी के बन्धन में कभी नहीं आता। वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, आप्तकाम, आनन्द, स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान व सर्वेश्वर है। इन शब्दों के यथार्थ अर्थों को समझना चाहिये और मूर्तिपूजा छोड़कर सर्वज्ञ ईश्वर का योग विधि से ध्यान करके समाधि का लाभ कर ईश्वर का साक्षात्कार करना ही जीवन के उद्देश्य की पूर्णता व सफलता है। नान्यः पन्था विद्यतेअयनायः।। ईश्वर को प्राप्त करने का अन्य कोई मार्ग है ही नहीं। सभी योगेश्वर कृष्ण जी के अनुयायियों को इस अवसर पर बृहत यज्ञ करके इसके दृष्ट व अदृष्ट फलों को प्राप्त कर जीवन को उन्नत करना चाहिये। हम अपने सुहृदय सभी मित्रों को श्रावणी पर्व और योगेश्वर कृष्ण जी के जन्माष्टमी पर्व के अवसर अपनी हार्दिक शुभकामनायें देते हैं और सबके अच्छे स्वास्थ्य, सुख व समृद्धि की सर्वव्यापक, निराकार, सर्वेश्वर से मंगल प्रार्थना करते हैं।

thearyasamaj.org

योगेश्वर कृष्ण-वंश, स्थान और समय

ले०—पं० चमूपति

भारत में ययाति नाम के एक बहुत पुराने राजा हुए हैं। शुक्राचार्य की लड़की देवयानी उनकी धर्मपत्नी थी। उससे उनके दो पुत्र हुए-यदु और तर्वसु। यदु का वंश, जिसमें श्री कृष्ण हुए, यादव वंश कहलाता है। इसी वंश के एक राजा हुए मधु। उनकी सन्तान माधव कहलाई। मधु के एक वंशज सात्वत हुए। उनके पीछे उसी कुल का नाम, जिसे उनसे पूर्व यादव और माधव कहते आए थे, सात्वत पड़ा। दूसरे शब्दों में यादव, माधव और सात्वत एक ही वंश के तीन भिन्न-भिन्न नाम हैं। सात्वत के पुत्रों में से अंधक और वृष्णि दो उपवंशों के चलाने वाले हुए। वृष्ण की सन्तति वृष्णि या वार्ष्णेय कहलाई। अंधक का एक और नाम महाभोज था। इससे उनके वंश का नाम भोज हुआ। अंधक के दो पुत्र हुए-कुकुर और भजमान। कुकर की संतति का नाम भी कुकर पड़ा और भजमान की सन्तति भजमान के पिता अंधक के नाम से अंधक ही कहलाती रही।

इस प्रकार यादव-वंश के दो उपवंश हो गए-एक वृष्णि, दूसरे भोज। भोजों के फिर दो भेद हुए-एक कुकुर, दूसरे अन्धक।

श्री कृष्ण वृष्णियों में से थे। इनके दादा का नाम था शूर। शूर का बड़ा लड़का वसुदेव था। वसुदेव के कई लड़के और लड़कियाँ हुईं। इस चरित्र के नायक श्री कृष्ण उनमें से एक थे।

श्री कृष्ण की माँ का नाम देवकी था। यह कुकुर जाति की थीं। यादव-कुल का राज्य उस समय कुकरों के हाथ में था। देवकी के पिता थे देवक, जिनका भाई उग्रसेन राज्य का अधिकारी था। उग्रसेन को उसके पुत्र कंस ने सिंहासन से उतारकर स्वयं राज्य सँभाल लिया था।

हमने ऊपर यादवों के केवल दो मुख्य उपवंशों का वर्णन किया है, क्योंकि इन वंशों का प्रस्तुत चरित्र से विशेष सम्बन्ध है। वास्तव में इन वंशों की संख्या सत्रह थी और इन कुलों में अठारह हज़ार पुरुष थे।

यादवों की राजधानी मथुरा थी। जरासन्ध के निरन्तर आक्रमणों से तंग आकर श्री कृष्ण की सलाह से इन्होंने मथुरा (मधुपुरी) छोड़ दी और समुद्र के किनारे पश्चिम में जा डेरा किया। यदि मथुरा में आम्रकुञ्जों की बहार थी तो द्वारिका में भी चारों ओर हरियाली-ही-हरियाली नज़र आती थी। रैवतक पहाड़ ने, जिसे आजकल गिरनार कहते हैं, द्वारिका की शोभा बढ़ा रखी थी। प्रकृति की गोद में पले सौंदर्य-प्रिय श्री कृष्ण कहते हैं-

''यह सोचकर हम सब पश्चिम दिशा में सुन्दर कुशस्थली में, जिसे रैवतक पर्वत ने और भी रमणीय बना दिया है, जा बसे।'' (सभा० १४/५०, ५२)

इस नगर-परिवर्तन का विस्तृत वर्णन हम प्रकरण आने पर फिर करेंगे।

वृष्णियों के घरेलू व्यवहार का वर्णन 'महाभारत' में इस प्रकार किया गया है-

''वृद्धों की आज्ञा में चलते हैं। अपने भाई-बन्दों का अपमान नहीं करते।'' ''ब्राह्मण, गुरु और सजातीय के धन के प्रति अहिंसा-वृत्ति रखते हैं।'' ''धनवान् होकर भी अभिमान-रहित हैं। ब्रह्म के उपासक और सत्यवादी हैं। समर्थों का मान करते हैं और दीनों को सहायता देते हैं। सदा देवोपासना में रत, संयमी और दानशील रहते हैं। डींगें नहीं मारते। इसीलिए वृष्णि-वीरों का राज्य नष्ट नहीं होता।'' (द्रोणपर्व ४४/२४-२८)

यादवों की राज्यशैली संघ के ढंग की थी। ये किसी एक राजा की आज्ञा पर चलते थे, किन्तु सभी का राज्य के निर्णयों में मत होता था। नाम को तो उग्रसेन राजा थे, परन्तु उनके पिता आहुक और वृष्णिकुल के नेता अक्रूर की आपस में बड़ी लगती थी। इन दोनों के पृथक्-पृथक् पक्ष थे। एक दल दूसरे दल के साथ उलझ जाता और किसी भी कार्य का निपटारा मुश्किल हो जाता। श्री कृष्ण इन दोनों दलों में बीचबचाव करते रहते थे। इन कुलों के दूसरे वीर भी श्री कृष्ण को चैन न लेने देते थे। ये अपने चरित्र की महिमा के कारण जिसमें शूरता, दक्षता, निर्वैरता, निः स्पृहता सभी गुणों का अपना-अपना स्थान था-संघ के मुख्य थे।

यादव सार्वजनिक जीवन में असहिष्णु थे, यह बात तो ऊपर के वर्णन से स्पष्ट ही है। उनका राष्ट्र स्वतन्त्र था, किसी के दबाए न दब सकता था। जरासंध के आक्रमणों के कारण समूचे वंशों ने अपने पहले पूर्वजों के समय से चले आए निवासस्थान को छोड़ एक दूरस्थ नये स्थान में जा बसेरा किया। जहाँ सम्पूर्ण राष्ट्र की यह दशा थी, वहाँ इस वीर-जाति का प्रत्येक व्यक्ति भी अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता छोड़ने को सहसा तैयार न था। इससे संघ के नायकों को कष्ट अवश्य होता था, परन्तु क्षत्रियों की आन पर धब्बा न आता था। इस आन का सबसे उज्जवल आदर्श वह था जो श्री कृष्ण के लड़के प्रद्युम्न ने सौभ नगर (वर्त्तमान अलवर) के राजा शाल्व की लड़ाई में अपने सारथि दारुक से कहा था। वृष्णिवीर कहता है-

''वह वृष्णि-कुल में नहीं पैदा हुआ जो रण में पीठ दिखाए, या

thearyasamaj.org

जो गिरे हुए पर आक्रमण करे या उस पर जो कहता है 'मैं तेरा हूँ', या जो स्त्री-बच्चे अथवा बूढ़े पर प्रहार करे, या रथ से विहीन गिर गए या उस पर जिसका शस्त्र टूट गया है।''

ऐसे कुल और ऐसे स्थान को हमारे चरित्र-नायक ने अपने देवोपम जन्म से सुशोभित किया। उनके जन्म का समय हमारी परम्परागत काल-गणना के अनुसार आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष पूर्व है। महाभारत का युद्ध कलियुग के आरम्भ में हुआ था और कलियुग के आरम्भ का समय भारतीय ज्योतिषियों ने आज से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व निश्चित किया है।

यूनानी यात्री मेगस्थनीज़ ने मथुरा का वर्णन करते हुए लिखा है कि यहाँ शौरसेनी लोग रहते हैं और वे हिराक्लीज़ की पूजा करते हैं। यह हिराक्लीज़ स्पष्टतया श्री कृष्ण ही हैं। इनके समय के सम्बन्ध में यवन यात्री उस समय की साक्षियों के आधार पर लिखता है कि वह डायोनिसियस से १५ पीढ़ियाँ पीछे हुए, डायोनिसियस से चन्द्रगुप्त तक-जिसके यहाँ वह दूत बनकर आया था, उनके कथनानुसार १५३ पीढ़ियों का अन्तर है, अर्थात् श्री कृष्ण चन्द्रगुप्त से १५३-१५=१३८ पीढ़ियों पूर्व हुए। ऐतिहासिकों की प्रथा का अनुसरण करते हुए प्रत्येक पीढ़ी को बीस वर्ष का समय दे दिया जाए तो यह अन्तर १३८×२०=२७६० वर्ष निश्चित होता है। यह हुआ श्री कृष्ण से चन्द्रगुप्त तक का समय। चन्द्रगुप्त ईसा से ३१२ वर्ष पूर्व हुआ था और आज ईस्वी संवत् को आरम्भ हुए १९३० वर्ष हो चुके हैं। इस प्रकार श्री कृष्ण को हुए आज तक-

चन्द्रगुप्त से पूर्व के वर्ष	२७६०
चन्द्रगुप्त से ईसा तक के वर्ष	३१२
आज ईसवी संवत्	१९३०
	वर्ष ५,००२

लगभग पाँच हज़ार वर्ष ही हुए। इससे प्रतीत होता है कि उक्त परम्परागत गणना आज ही की चलाई हुई नहीं, किन्तु चन्द्रगुप्त के समय में अर्थात् आज से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व भी यही गणना प्रचलित थी। संभव है, उस समय इस गणना की कुछ और भी ऐतिहासिक साक्षियाँ रही हों जो आज उपलब्ध नहीं होतीं।

महाभारत के इस काल में साक्षियाँ और भी दी जाती हैं ; यथा-

(१) शतपथब्राह्मण में लिखा है-

''**कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्ये न च्यवन्ते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्ये दिशश्च्यवन्ते।**'' अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र में अग्नि का आधान करे। यह नक्षत्र पूर्व दिशा से च्युत नहीं होता ; अन्य होते हैं।

कृत्तिका नक्षत्र की आज यह स्थिति नहीं। आज की स्थिति से ऊपर कही स्थिति की ज्योतिष के नियमानुसार तुलना करने से दीक्षित महाशय ने पता लगाया है कि शतपथ की ऊपर की उक्ति का समय ३,००० वर्ष ईसा से पूर्व है। छान्दोग्य-उपनिषद् शतपथ का समकालीन है और उसमें कृष्ण-देवकी-पुत्र के घोर आङ्गिरस से शिक्षा पाने का उल्लेख है। यदि ये कृष्ण वही महाभारत के कृष्ण हों तो इनका समय ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व होगा, अर्थात् आज से लगभग ५,००० वर्ष पूर्व।

(२) राजतरङ्गिणीकार कल्हण ने वराहमिहिर का यह कथन उद्धृत किया है-

''**षड्द्विक् पञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च।।**''

(राजतरङ्गिणी १.५६)

अर्थात् ''युधिष्ठिर का समय शककाल में २५२६ वर्ष मिलाने से निकलता है।'' शककाल ईसवी संवत् से ७८ वर्ष पीछे हुआ। इस गणना से महाभारत का समय २५२६-७८=२४४८ वर्ष ईसा से पूर्व निकलेगा। यह भी तब, जबकि कुरु-पाण्डवों का समय कलियुग के आरम्भ से ६५३ वर्ष पीछे मानें। परन्तु स्वयं कल्हण का कथन है कि मुझसे पूर्व के इतिहासकार युधिष्ठिर का समय द्वापर के अन्त में (अर्थात् कल्हण की मानी तिथि से ६५३ से अधिक वर्ष पूर्व) मानते आए हैं। दूसरे शब्दों में, यह समय ईसा से २४४८+६५३=३१०१, या मोटे शब्दों में ३००० वर्ष पूर्व हुआ।

ऊपर दी गई साक्षियों का संयुक्त संकेत एक ही है। वह यह है कि हमारी प्रचलित परम्परागत काल-गणना का आधार वस्तुस्थिति न होकर मन-गढ़न्त हो, ऐसा नहीं। यदि इस विषय में महाभारत की अन्तः साक्षी प्राप्त हो जाए तो वह इस समस्या की निर्णायक होगी। भीष्म की मृत्यु के समय तारों की स्थिति इस प्रकार कही गई है-

प्रवृत्तमात्रे त्वयनमुत्तरेण दिवाकरे।
शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव।।
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे।
समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः।।

(शान्तिपर्व ४६, ३, ४)

अर्थात् सूर्य के उत्तरायण आते ही, शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन दोपहर को प्राजापत्य (रोहिणी) नक्षत्र में।

श्रीयुत नारायण शास्त्रियर ने स्वलिखित अंग्रेज़ी भाषा के The Age of Shankara पुस्तक (शंकर का काल) में इस तिथि का पूर्व-कथित श्री कृष्ण के हस्तिनापुर-प्रस्थान तथा महाभारत के आरम्भ आदि की तिथियों से मिलान कर इस कथन की यथार्थता को प्रमाणित किया है, और ज्योतिष की गणनाओं से सिद्ध किया है कि नक्षत्रों की यह स्थिति ३१३९ ई० पूर्व ही में हो सकती थी। यदि यह गणना ठीक हो तो श्री कृष्ण का काल निश्चित ही है।

बालकाल और शिक्षा

जन्म के पश्चात् श्री कृष्ण को मथुरा से गोकुल, जो यमुना के दूसरे किनारे कोई ढाई मील की दूरी पर विद्यमान है, भेज दिया गया। इससे पूर्व इनके बड़े भाई बलराम भी अपनी माँ रोहिणी के साथ वहाँ रहते थे। श्री कृष्ण के साथ भी या तो उनकी माता देवकी

thearyasamaj.org

गई होंगी या किसी धायी को इन्हें पालने-पोसने का काम सौंपा गया होगा। मथुरा में वसुदेव का नगर-गृह था और गोकुल में ग्राम-गृह। यादव अपने बच्चों के बालकाल का आवास गाँव ही को बनाना अच्छा समझते थे। वसुदेव के घर में यह प्रथा रही होगी, यह बलराम, कृष्ण और संभवत: सुभद्रा के भी उदाहरणों से प्रतीत होता है। सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ और वह ग्वालिन के वेष में ससुराल गई। यह वेष उसे इतना प्यारा क्यों था ? संभवत: इसलिए कि उसकी बचपन की सहेलियाँ ग्वालिनें थीं और यह उनकी और बातों के साथ उनके वेष से भी स्नेह करती थी। बचपन में उनकी देखा-देखी कभी-कभी उनका वेष भी धारण कर लेती होगी और अब इस युवावस्था में उन बचपन की सखियों का स्वाँग भर तथा उस भोले-भाले समय की प्यारी-प्यारी स्मृतियों को मूर्त कर प्रसन्न होती होगी।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात। कृष्ण अपने आने वाले चमत्कारी जीवन का पूर्व परिचय माता की गोद में देने लगे। इनकी बालावस्था का सबसे पहिला कारनामा है पूतना को मारना। पूतना एक स्त्री थी जिसका दूध पीते ही बच्चे मर जाते थे। जैसा उसके नाम से प्रतीत होता है, उसके स्तनों में पस थी। अपनी स्वाभाविक दुष्टता के कारण उसने एक रात कृष्ण को गोदी में लेकर अपने स्तनों से लगा लिया। कृष्ण ने उसका स्तन मुँह में लेने के स्थान में उसे दोनों हाथों में लेकर भींच दिया। इससे उसकी पस निकल गई। फिर जो इन्होंने उसे मुँह में लेकर बलपूर्वक चूसा तो रक्त का स्राव बड़े वेग से आरम्भ हो गया। पूतना चीखें मार मारकर वहीं मर गई। बालक ने रक्त को क्या पीना था, थूक ही दिया होगा। परन्तु इससे स्राव की क्रिया झट शुरू हो गई, जो पूतना की मृत्यु का कारण हुई।

एक दिन माता इन्हें सोया छोड़कर कहीं चली गई। ये पीछे जग गए और लुढ़कते-लुढ़कते गाड़ी के नीचे जा पड़े। गाड़ी बिगड़ी हुई थी। सहारे से खड़ी होगी। निकी लात लगने से उलट गई। ग्वालों में इसकी खूब चर्चा हुई। जब कृष्ण बड़े हुए और वास्तव में बड़े-बड़े काम करने लगे तो लोग इनकी बालकपन की इन लीलाओं को स्मरण कर कहते-अजी ! ये तो जन्म-काल से ही चमत्कार दिखाते आए हैं। लुढ़कते-लुढ़कते गाड़ी उलट दी थी।

चलने-फिरने लगे तो इन्होंने एक पक्षी को मार दिया। वह पक्षी चील था या गिद्ध, या इसी प्रकार का कोई और हिंस्रजन्तु।

जब कुछ सयाने हुए तो इनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया, वह भी उस गोकुल ही के पास। कृष्ण और बलराम की आयु में कुछ महीने ही का अन्तर था। इकट्ठे पले और इकट्ठे ही बड़े हुए थे। इनकी शिक्षा भी एक साथ होने लगी। यहाँ तक कि दोनों स्नातक हो गए। दोनों भाई शारीरिक बल में अतुलनीय थे। कृष्ण वेद-वेदाङ्ग के भी अद्वितीय पण्डित हुए। फिर दान, दया, बुद्धि, शूरता, शालीनता, चतुराई, नम्रता, तेजस्विता, धैर्य, सन्तोष, सभी गुणों में इन्होंने अनुपम ख्याति लाभ की। शस्त्रास्त्र चलाने में दोनों भाई निपुण थे। इस विद्या की शिक्षा ये आगे चलकर औरों को भी देते रहे। युद्ध-विद्या की कुछ-एक महत्त्वपूर्ण शाखाओं के ये विशेष उस्ताद समझे जाते थे।

पढ़ते गुरुकुल में थे, परन्तु साथ लगते ग्रामों के जीवन में लगे हाथ भाग लेते ही रहते थे। गोकुल के लोगों को इन्होंने कई बार बड़ी भयंकर आपत्तियों से बचाया।

एक बार एक बड़ा बैल पागल हो गया। वह गौओं के लिए मानो मूर्त यम बना हुआ था। आँखें लाल-लाल, सींग कसे हुए। खुरों से धरती को उखाड़ता फिरता था। जिह्वा बाहर लटकाए हुए होठों को दबाता और चाटता था। गरीब ग्वालों की जान पर आ बनी थी। कृष्ण को पता लगा तो वे झट वहाँ पहुँचे और अपनी बलवान् भुजाओं से पकड़कर उस वृषासुर को उन्होंने नीचे पटक दिया और गिराकर झट मार डाला। इस बैल का नाम अरिष्टि था।

ऐसे ही केशी नाम का लम्बे-लम्बे बालों वाला घोड़ा यमुना के जंगल में फिरता था। वह था तो बड़ा मोटा-ताज़ा, परन्तु नितान्त बनेला। किसी को पास न आने देता था। आते-जाते पर दौड़ता था। खुरों से पृथिवी को खोदता था। कृष्ण उसके पास गए तो वह उन पर झपटा। इन्होंने उसे भी निहत्थे ही मार गिराया। इससे इनका नाम केशिसूदन हुआ।

इससे कुछ समय पूर्व गोकुल में भेड़िये आ पड़े थे। उनसे ग्वालों को बहुत कष्ट होता था। कृष्ण ने गोपों को समझाकर उनसे गोकुल छुड़वा दिया और उन्हें वृन्दावन में जा बसाया। ग्वालों की सम्पत्ति गायें ही तो थीं। उन्हें हाँका और छकड़ों पर सामान लादकर दूसरे स्थान पर जा बसे, जो अधिक सुरक्षित था।

वहाँ एक तालवन था। ताड़ के वृक्षों में फल पक गए थे। ग्वाल-बाल उन्हें देखते और उनका जी ललचाता। परन्तु कुछ जंगली गधों ने वहाँ वास कर रखा था। वे किसी को उन वृक्षों की छाया में फटकने तक न देते थे। कृष्ण-बलराम वहाँ से गुज़रे तो बालकों ने उनसे शिकायत की। इन्होंने फल तोड़ दिये। इस पर गधों से इनकी झपट हो गई। इन्होंने खेल-खेल में वृक्षों के नीचे ही उन जंगली जानवरों को गिरा दिया। फिर गधों को वहाँ क्या ठहरना था ? बड़े गधे का नाम लोगों ने धेनुक रख छोड़ा था। वह गर्दभराज आगे-आगे और दूसरे गधे पीछे-पीछे। बस ! अब जहाँ ग्वाल-बाल मज़े से तालफल उड़ाने लगे, वहाँ गायों को भी उस वन की हरी-हरी घास चरने में बाधा न रही।

इस प्रकार गोपों और गोपियों को हिंस्र जन्तुओं से बचाकर और ग्वाल-बालों को तालफल खिलाकर कृष्ण और बलराम गाँव-भर के दुलारे बन गए। इतने में गोपों का एक उत्सव आ गया। उस उत्सव में वे पुरानी प्रथा के अनुसार कृषियज्ञ किया करते थे। संभवत: उनके पूर्वज कभी कृषक रहे होंगे। परन्तु अब उनका धंधा गोपालन था। कृष्ण ने उन्हें समझाया, "अब हमें हल और

thearyasamaj.org

जुए की पूजा से क्या लेना ? हमारे देवता तो अब गायें हैं या गोवर्धन पर्वत। गोवर्धन पर घास होती है। उसे गायें खाती हैं और दूध देती हैं। इससे हमारा गुज़ारा चलता है। चलो गोवर्धन और गौओं का यज्ञ करें। गोवर्धन का यज्ञ यह है कि उत्सव के दिन सारी बस्ती को वहीं ले चलें। वहाँ होम करें। ब्राह्मणों को भोजन दें। स्वयं खाएँ, औरों को खिलाएँ। कार्तिक का महीना है। पहाड़ फूलों से लद रहा है। हम इन फूलों से गायों को सजाएँ। इन्हें फिराएँ, खिलाएँ, घुमाएँ। यह गौओं की पूजा है।'' ग्वालों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। इस यज्ञ के ऋत्विक् कृष्ण हुए। इस पुण्य घटना के स्मरण में गोपाष्टमी का उत्सव अब भी मनाया जाता है। इस यज्ञ का एक अंश था खेलना। श्री कृष्ण उस दिन मजे से खेलते फिरे और गोपजनों के साथ मिलकर इन्होंने खूब खाया-पिया। कैसा आनन्द का अवसर था। भोग यज्ञ का अंग होकर स्वयं यज्ञ हो गया।

इसके कुछ समय अनन्तर वृन्दावन में बड़ी वर्षा हुई। नदी-नाले सब ओर से भर-भर कर बहने लगे। यमुना में बाढ़ आ गई और ग्वालों का बस्ती में रहना असंभव हो गया। कृष्ण, जो सभी भीड़ों में ग्रामवालों के आड़े आते थे, इस समय भी उनकी एकमात्र ओट बने। सारी बस्ती की बस्ती को गाँव से निकालकर उसी गोवर्धन पर्वत पर ले चले। पर्वत की खुदाई कराई गई। वृक्ष गिराए गए। साँप, बिच्छू, चीता आदि हिंस्र जन्तुओं से वन को खाली किया गया और सारी बस्ती का गायों के गल्लों-समेत वहीं आवास करा दिया गया। सात दिन लगातार वर्षा होती रही। कृष्ण ने अपना डेरा इसी आवास में जा लगाया। ये गोपों की छावनी को सँभाले रात-दिन वहीं डटे रहे। यही इनका गोवर्धन का उठाना था। सचमुच उन दिनों सारा आवास ही-या यों कहिए कि सारा पर्वत ही-इनकी हथेली पर थमा खड़ा था। वर्षा थमी, बाढ़ उतरी, गोप-गोपियों ने कृष्ण को मानो अपनी आनन्द से भरी मूक धन्यवादों से परिपूर्ण आँखों में बिछा लिया। कृष्ण गाँव-भर की आँखों के तारे हो गए। इस कड़े काल में यादववीर की बुद्धि, यादववीर का साहस, यादववीर का परिश्रम, उनको अपना, अपने बच्चों तथा गायों का प्राणदाता प्रतीत हो रहा था। वे सौ जान से वृष्णिवीर पर न्यौछावर होने लगे।

श्री कृष्ण ने गोवर्धन की गोदी में पाई तो शिक्षा ही थी, परन्तु अपने चारित्र्यबल से आस-पास की बस्ती को अपना श्रद्धालु शिष्य-अनन्य भक्त बना लिया था। गोवर्धन की तलहटी अब सचमुच उनकी हथेली पर नाचती थी। उस प्रान्त-भर को इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी। आगे जाकर इनकी सेना में मुख्य स्थान गोपालों तथा आभीरों का हुआ है। यह फल उसी बालकाल के वात्सल्यमय सेवाव्रतपूर्ण ब्रह्मचर्य ही का था।

कंस का वध और संघ की पुनः स्थापना

स्नातक होने के पश्चात् श्री कृष्ण मथुरा में आए। जैसे हम पहले कह आए हैं, उस समय मथुरा के राज्य-सिंहासन पर कंस बलात्कार से आरूढ़ था। इसे यादवों के संघ ने अपनी रीति अनुसार राजा स्वीकार नहीं किया था। किन्तु मगध के राजा जरासंध की दो लड़कियों-अस्ति और प्राप्ति-से विवाह कर यह उसी जरासन्ध के बल-बूते से ही मथुरा का स्वच्छन्द एकराट् राजा बन गया था। न यादवों के संघ ने इसे राजा बनाया, न इसने फिर संघ की रीति-नीति चलने ही दी। संघ तो इसके पिता उग्रसेन को ही अपना अधिपति मानता था। परन्तु संघ की और उसकी अब चल न सकती थी। इतने यादवों के रहते एक पराये राष्ट्र का नियुक्त किया राजा मथुरा पर राज्य कर रहा था। इसका कारण यादवों की अपनी आपस की फूट थी। कंस के दादा आहुक और वृष्णियों में बड़े अक्रूर ने यादवों के दो दल बना रखे थे जो कंस के विरोध में भी एक न हो सकते थे। ऐसे समय में श्री कृष्ण का मथुरा के राजनैतिक जगत् में प्रवेश हुआ। कंस का राजा होना उन्हें अखरा। इन्होंने यह भी देखा कि कंस यादव-वीरों पर मनमाना अत्याचार कर रहा है, पर यादव हैं कि चुपचाप सह रहे हैं। कारण कि उनकी आपस में बनती नहीं। आहुक और अक्रूर की अनबन ने ही सारा खेल बिगाड़ रखा था। इन्होंने इन दोनों को मिला देने का एक अनूठा ढंग निकाला। आहुक की लड़की सुतनु का, जो उग्रसेन की बहिन होने से उग्रसेन भी कहलाती थी, अक्रूर से विवाह करा दिया। इस प्रकार ये दोनों दल अब झटपट एक हो गए।

कृष्ण ने यह विचार पक्का कर लिया कि कंस को मार ही देना चाहिए। जब तक यह जीता है, जरासंध इसकी पीठ पर रहेगा और मथुरा में संघ की फिर से स्थापना न हो सकेगी। संघ यादवों की जान था। संघ-प्रणाली के रहते ही उनका नैतिक विकास हो सकता था। जरासंध के साम्राज्य का एक भाग बनकर उनकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता का नाश हो रहा था। परन्तु अब कंस को मारे कौन ? संभव है, इसी बात पर नए झगड़े खड़े हो जाएँ। कृष्ण ने यह जोखों का कार्य अपने ऊपर लिया।

जरासंध की तरह कंस ने भी कुछ पहलवान अपनी रक्षा के लिए रख छोड़े थे। एक दिन कृष्ण ने उनमें से एक, चाणूर के साथ मल्लयुद्ध करना मान लिया। चाणूर के साथ मुष्टिक के जोड़ बलराम हुए। कंस ही की अध्यक्षता में यह मल्लयुद्ध रचा गया। कंस को अपने पहलवानों की शक्ति और युद्ध-कौशल का अभिमान था। परन्तु इधर कृष्ण और बलराम भी इस विद्या के उस्ताद थे। कंस को इन वृष्णि-वीरों के षड्यन्त्र का पता था और वह इन्हें अपने रास्ते में कण्टक समझता ही था। इस दंगल की आयोजना उसी ने की थी और अपने पहलवानों को समझा भी दिया था कि बस चले तो इन युवकों का काम तमाम कर दें। कसर इतनी रही कि उसने इन वृष्णिकुमारों के बल का अनुमान ठीक नहीं किया। दंगल का परिणाम उसकी आशा के ठीक विपरीत हुआ। कृष्ण ने चाणूर को और बलदेव ने मुष्टिक को एक-दो दाँवों में ही पछाड़ दिया। उनके घातक दाँव तो इन पर नहीं चले, परन्तु इन्होंने कंस

thearyasamaj.org

की इस इच्छा को कि दंगल का परिणाम मृत्यु में हो, स्वयं उनको झँझोड़कर, निष्प्राण करके पूरा कर दिया।

वे पहलवान कंस के आश्रयभूत थे। उन्हें मरा देख कंस को जोश आ गया। कृष्ण ने लगे हाथ कंस पर भी वहीं हाथ साफ कर दिया। कंस का भाई सुनामा कृष्ण की ओर झपटा, परन्तु बलराम ने उसे भी दबोचकर यमलोक की राह दिखा दी।

कृष्ण इस दंगल का विजेता था। उसने कंस के सिंर से उतरा मुकुट उसके पिता उग्रसेन के सिर पर जा रखवाया। संघ भी तो उसी को चाहता था। उसी से राज्य की समृद्धि की आशा थी। उपद्रव की संभावना थी भी तो वह तत्काल दूर हो गई। राज्य भोजों के अपने ही घर में रहा।

श्री कृष्ण की शिक्षोत्तर-काल की यह पहली विजय है कि नष्ट हुए संघ को उन्होंने पुनरुज्जीवित कर दिया। यादवों की खोई हुई स्वतन्त्रता अपनी अदभुत बुद्धि तथा बाहुओं के अनुपम बल से फिर से स्थापित कर दी।

जरासन्ध के आक्रमण और यादवों का द्वारका-प्रस्थान

जरासन्ध मगध (बिहार) का राजा था। उसने बलपूर्वक और भी बहुत-से राज्य अपने अधीन कर लिये। इससे वह सम्राट बन गया था। अधीनस्थ राज्य अपनी आन्तरिक नीति में स्वतन्त्र होते थे, परन्तु सम्राट को उन्हें समय-समय पर कर देना पड़ता था। करूष (वर्तमान रेवा) का राजा वक्र (अथवा दन्तवक्र) जो बड़ा बलशाली था और लड़ाई के वैज्ञानिक ढंगों से भी परिचित (मायायोधी) था, उसका शिष्य-सा बना हुआ था। ऐसे ही करभ का राजा मेघवाहन, जिसकी ख्याति एक दिव्य मणि के कारण बहुत फैली हुई थी, जरासन्ध के इशारे पर चलता था। प्राग्ज्योतिष् (वर्तमान पूर्वीय बंगाल और कुछ-कुछ असम) का राजा भगदत्त, जिसके अधीन मुरु और नरक नाम के दो राजा थे, केवल वाणी से नहीं, क्रियात्मक रूप से जरासन्ध के वश में था। युधिष्ठिर का मामा पुरुजित्, जो कुन्तिभोज का लड़का था, जरासन्ध की ओर जा चुका था। इसकी राजधानी मालवे में थी। चेदिकुल का वासुदेव जिसका राज्य वंग (ब्रह्मपुत्र और पद्मा के बीच का देश), पुण्ड्र (उत्तर बंगाल) और किरात (सिलहिट और असम) पर फैला हुआ था और जो अपने-आपको पुरुषोत्तम प्रसिद्ध कर श्री कृष्ण का प्रतिस्पर्धी बन रहा था, वह भी जरासन्ध का साम्राज्य स्वीकार कर चुका था। यही हाल भीष्मक का था, जिसने पाण्डय (तिन्नावली और मदुरा) और क्रथकेशिक (बरार, खानदेश, निज़ाम का राज्य और कुछ-कुछ मध्यप्रदेश) पर विजय प्राप्त की थी। इसके राज्य को विदर्भ कहते थे।

इनके अतिरिक्त कुछ राजवंश ऐसे थे जो जरासन्ध की अधीनता स्वीकार न करते थे। इन्हें उत्तर भारत छोड़ पश्चिम आदि दिशाओं में भाग जाना पड़ा था। ऐसे अठारह कुल तो भोजों के थे।

शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व, पटच्चर, सुस्थल, मुकुट्ट, कुलिन्द, कुन्ति, शाल्लायन, दक्षिण पांचाल, पूर्व कोशल-ये सब वंश अपने-अपने पुराने स्थानों को छोड़कर अन्यत्र भाग गए थे। मत्स्य लोग दक्षिण की ओर चले गए थे। समस्त पांचालों ने अपने पुराने राज्य को तिलाञ्जलि दे इधर-उधर दूसरे राज्यों में शरण ढूँढ ली थी।

जिन राजाओं ने जरासन्ध के अधीन रहना नहीं माना, उन्हें जरासन्ध ने कारागार में डलवा दिया। धमकी यह भी दी कि जब ऐसे राजाओं की संख्या पूरी एक सौ हो जाएगी तो इन्हें महादेव की बलि चढ़ा दिया जाएगा।

यादवों को अपने साम्राज्य में इस प्रकार ले लिया कि वहाँ के राजकुमार कंस से अपनी दो लड़कियों का विवाह कर दिया और उसके भाई सुनामा को 'अक्षौहिणी-पति' बनाकर यादवों के संघ को, जो आन्तरिक फूट के कारण खोखला हो रहा था, झट कुचल दिया। कंस वहाँ एकराट् (Monarch) हो गया। परन्तु यह सारा खेल तो जैसे हम ऊपर देख सके हैं, कृष्ण ने अपनी नीति-निपुणता से बिगाड़ दिया। कंस और सुनामा दोनों मारे गए और मथुरा में फिर से संघ की स्थापना हो गई।

जरासन्ध यादवों की इस ढिठाई को चुपके-चुपके कैसे देख सकता था ? इन्होंने एक ही बार में इधर तो उसके जामाता को मारकर उसकी एक नहीं, दो लड़कियों को एक-साथ विधवा कर दिया, उधर अपना मथुरा का राष्ट्र जरासन्ध के साम्राज्य से ही निकाल लिया। जरासन्ध ने यादवों पर लगातार सत्रह आक्रमण किये। भला ये उसके सामने थे ही क्या ? एक ओर एक पूरे साम्राज्य की शक्ति और दूसरी ओर इने-गिने यादव, जिनकी सारी संख्या ही अठारह हज़ार से अधिक न थी। श्री कृष्ण एक स्थान पर यादवों की इस मंत्रणा का वर्णन करते हैं कि यदि हम तीन सौ वर्ष तक निरन्तर जरासन्ध की सेना को मारते जाएँ, तो भी वह समाप्त होने में न आएगी। यह विषय अनुपात रहते भी इन स्वतन्त्रता के परवाने यादवों का युद्ध-कौशल देखिए कि इन्होंने सत्रहों बार जरासन्ध की अनगिनत सेनाओं को निष्फल लौटाया।

जरासन्ध के पास दो पहलवान थे, हंस और डिम्भक। वे उसे बहुत प्यारे थे। अपनी निजी रक्षा का भार उसने उन पर छोड़ रखा था। सत्रहवीं लड़ाई में जरासन्ध के साथ एक राजा आया था, जिनका नाम हंस था। उसे बलराम ने मार दिया। डिम्भक ने यह समाचार सुना तो वह समझा कि उसका साथी हंस मारा गया है। साथी से उसे अनन्य प्रेम था। उसकी मौत का वृत्तान्त सुनते ही वह यमुना में कूद पड़ा और डूबकर मर गया। हंस ने यह खबर सुनी तो उसने भी साथी से वियुक्त होकर जीना व्यर्थ समझ उसी प्रकार आत्महत्या कर ली। यमुना की गोदी में वे दो बिछुड़े पहलवान फिर से इकट्ठे हो गए। जब जरासन्ध को पता लगा कि उसके दोनों प्रधान रक्षक मर चुके हैं तो उसकी हिम्मत टूट गई और वह युद्ध को बन्द कर मगध लौट गया। हो सकता है कंस की मौत जो इसी तरह उसके दो पहलवानों के मरने के पश्चात् हुई थी, जरासन्ध की

thearyasamaj.org

हतोत्साहता का कारण बनी हो। कुछ हो, यादवों की बन आई। उन्हें संग्राम में और अधिक नहीं लड़ना पड़ा।

स्वतन्त्र यादवों के लिए इन विजयों का आनन्द ही बहुत था। बड़े मज़े से अपने बाहुबल से जीती हुई मथुरापुरी में आनन्द-विहार करते थे। परन्तु फिर इन्होंने सोचा कि इस प्रकार शत्रुओं के जबड़ों में कब तक निश्चिन्त रह सकेंगे ? जरासन्ध की अक्षौहिणियाँ भले ही इन्हें जीत न सकें, परन्तु तंग तो सदैव करती रहेंगी। यादवों में इतनी शक्ति न थी कि झट से उनका उन्मूलन कर दें। कंस की विधवा पत्नियाँ अपने पिता को नित्य उकसाती थीं कि हमारे मरे पति का अवश्य बदला लीजिए। वह पिता भी था, सम्राट भी। दोनों स्थितियों से यादवों का जी-जान से वैरी था। रोज़ की चिन्ता-चिता से मुक्त होने का उपाय सयाने यादवों ने यही सोचा कि उस क्रूर की आँखों से दूर हो जाओ। समूचे यादव मथुरा को छोड़ द्वारका चले गए। वहाँ उन्होंने एक दृढ़ दुर्ग बनाया। उसकी बनावट ऐसी रखी कि पुरुष तो पुरुष, यदि कभी उसमें केवल स्त्रियाँ ही रह जाएँ तो वे भी आक्रमणकारी वैरियों के दाँत खट्टे कर सकें।

द्वारका के एक ओर वीचि-विहार करता हुआ समुद्र, दूसरी ओर रैवतक पहाड़। शस्यश्यामला भूमि। जिधर देखो हरियाली लहलहा रही है। गोवर्धन की तलहटी में पले वृष्णिकुमार गोकुल के आम्रकुञ्जों का मज़ा रैवतक (जिसका दूसरा नाम गोमान् था) की कुशस्थलियों में लेने लगे। सुरक्षित स्थान ने आक्रमण की चिन्ता ही मिटा दी। संघ का रास्ता बाह्य आपत्तियों से निष्कण्टक हो गया।

प्रतीत होता है, द्वारका में इससे पूर्व भी वृष्णि रहते थे। अब अन्धक भोज भी, जिनकी प्रधानता पहले मथुरा में थी, यहाँ आ गए, आखिर थे तो वे सब भाई-बन्धु ही।

रुक्मिणी

जरासन्ध के साम्राज्य को स्वीकार करने वाले राजाओं में हम विदर्भ के राजा भीष्मक का उल्लेख कर चुके हैं। उसका कुल भी ऊँचा था। वह बलशाली भी बड़ा था। राज्य का विस्तार मध्यप्रदेश, बरार, खानदेश, निज़ाम की रियासत तथा मथुरा और तिन्नावली (या यदि उस समय की संज्ञाओं का प्रयोग करना हो तो क्रथ, कैशिक और पाण्डय) इन सब प्रदेशों पर फैला हुआ था। उसकी लड़की थी रुक्मिणी। वह कृष्ण के गुणों पर मुग्ध थी और उन्हीं से विवाह करना चाहती थी। उसके प्रति कृष्ण की भी यही मनोवृत्ति थी। परन्तु जरासन्ध को अपने जामाता के घातक यादवों को मागध साम्राज्य से निकाल ले-जाने वाले कृष्ण से अपने एक वशवर्ती राजा की लड़की का पाणिग्रहण होना स्वीकार न था।

कृष्ण की एक और फूफी का लड़का था शिशुपाल। चेदिराट् दमघोष उसका पिता था। वह भी जरासन्ध के गुट में था। शिशुपाल जरासन्ध का सेनापति था। जरासन्ध के कहने से भीष्मक ने अपनी लड़की का सम्बन्ध शिशुपाल से करना निश्चित किया।

विवाहोत्सव पर मगध-साम्राज्य के सारे राजा निमन्त्रित हुए। कृष्ण यह कहाँ सहन कर सकते थे कि उनसे प्यार करने वाली, उनकी चहेती, रुक्मिणी का लग्न इनके रहते किसी दूसरे से हो जाए ? विवाह-दिवस से एक दिन पूर्व वे भी उचित समारोह के साथ वहाँ जा पहुँचे और अवसर पाकर रुक्मिणी को निकाल लाए। विवाह में आए राजाओं ने रास्ता रोका, परन्तु कृष्ण सबको परास्त कर चलते बने। पीछे बलराम आदिकों ने सेनाओं सहित शत्रुओं का सामना किया।

रुक्मिणी का भाई रुक्मी, जो उस समय के अद्वितीय वीरों में से था, इस कुलापमान को सह न सका। वह पहले से ही कृष्ण से अपनी बहिन का पाणिग्रहण होने का विरोधी था। उसने अपनी चतुरंगिणी सेना साथ ले कृष्ण का पीछा किया। कृष्ण जानते थे कि वह वीर है। इन्होंने उसे पास आने दिया। इससे पूर्व उसने इनके दर्शन न किये थे। इन योगीराज को देखते ही उसके हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने झट अपनी हार स्वीकार कर ली।

यह दूसरे शब्दों में विदर्भों की ओर से रुक्मिणी का लग्न कृष्ण से होने की स्वीकृति थी। जहाँ कृष्ण की सुन्दर छवि और प्रभावशाली शील से रुक्मी परास्त हुआ था, वहाँ उसने एक नए नगर की स्थापना की, जिसका नाम भोजकट रखा गया। इस प्रकार रुक्मिणी का विवाह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना बन गई। स्थिर स्मारक ने इन कुलों के मेल को इतिहास में अमर कर दिया।

कृष्ण रुक्मिणी को साथ ले घर लौट आए और उससे विधिपूर्वक विवाह किया।

जैसा कृष्ण ने फिर एक बार शिशुपाल से भरी सभा में कहा था, रुक्मिणी उनकी दृष्टि में वेद की ऋचा थी, जिसे शिशुपाल जैसा "मूढ़ शूद्र" प्राप्त ही नहीं कर सकता था। परवशवर्ती क्षत्रिय शूद्र नहीं तो क्या है ?

उन दिनों क्षत्रिय-कन्याओं के विवाह तीन प्रकार से होते थे। सबसे उत्तम ढंग तो स्वयंवर का था। सभी विवाहार्थी कन्या के घर एकत्र हुए। जिसने विवाह की शर्त भी पूरी कर दी और कन्या को भी वह वीर स्वयं या उसका चुना हुआ वर इष्ट हुआ, उसकी इच्छानुसार उस राजकुमारी का पाणिग्रहण हो गया। विवाह का दूसरा ढंग कन्या के वीर्य-शुल्का उद्घोषित करने का था। यह दूसरे शब्दों में क्षत्रिय वीरों को निमन्त्रण होता था कि कन्यागृह में एकत्र होकर आपस में युद्ध करें और जो सब प्रतिद्वंद्वियों को जीत जाए, वह कन्या की इच्छा से उसका विवाह अपने साथ या किसी और के साथ कर दे। यदि कन्या का पिता इन दो में से किसी विधि का अवलंबन कर ले तो ठीक। इसमें सबको अपना बल-पराक्रम दिखाने का अवसर था और कन्या को भी अपनी मति के अनुकूल वर प्राप्त हो सकता था। परन्तु यदि कोई पिता इन विधियों को छोड़ केवल अपनी इच्छा से अपनी लड़की का सम्बन्ध करने लगे तो वह बलात्कारी समझा जाता। किसी और विवाहेच्छु के लिए कन्या-हरण के सिवाय अब और कोई रास्ता ही न था। वह अपनी इच्छा कन्या पर कैसे प्रकट करता ? वह आता और कन्या को रथ में

thearyasamaj.org

बिठाकर अपने साथ ले जाता। कन्या की अनुमति लेना विवाह के लिए तीनों विधियों में आवश्यक था। बलात्कार से उससे विवाह नहीं होता था।

उदाहरणतया द्रौपदी का स्वयंवर हुआ। उसने कर्ण से विवाह नहीं करना चाहा तो चाहे कर्ण कितना ही वीर था और विवाह की शर्त भी पूरी कर सकता था, परन्तु द्रौपदी का विवाह उससे नहीं हुआ। यहाँ तक कि कर्ण उसी समय विवाहार्थियों की श्रेणी से ही पृथक् हो गया। भीष्म अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को, जो वीर्यशुल्का उद्घोषित हुई थीं, अपने बाहुबल से जीत लाए। इनमें से अम्बिका और अम्बालिका ने भीष्म के भाई विचित्रवीर्य से विवाह करना स्वीकार कर लिया, परन्तु अम्बा ने इन्कार किया। उसके उस समय के वे शब्द उस समय के वीरों के शील तथा क्षत्रिय-कुलों की मर्यादा पर एक सुन्दर प्रकार डालते हैं। क्षत्रिय कन्या ने कहा-

"हे भीष्म ! आप धर्म को जानते हैं। सब शास्त्रों के आप पण्डित हैं। मेरी बात सुन लीजिये। फिर जो धर्म हो वही कीजिये। मैं पहले अपने मन में शाल्वराज को ही वर चुकी हूँ और वे मुझे वर चुके हैं। मेरे पिता इस रहस्य को जानते थे। क्षत्रिय वीर ! आप किस तरह मुझे, जो एक और को दिल दे चुकी हूँ, अपने घर में बसाएँगे ? इससे आप धर्म का उल्लंघन करेंगे। और फिर आप कौरव है।"

भीष्म ने यह सुनते ही अम्बा को अनुमति दे दी कि वह जिस वीर के हृदय से अपने हृदय की गाँठ बाँध चुकी है, उसी के पल्ले से अपना पल्ला बाँधे।

यही बात हरण में थी। दूसरे शब्दों में, हरण अपनी इच्छा किसी युवती कन्या पर प्रकट करने का बलपूर्वक अवसर प्राप्त करना था। बलपूर्वक उस समय, जब इसके बिना काम न चलता हो। बल का प्रयोग परिवार के प्रति था, कन्या के प्रति नहीं। फिर विवाह तभी हो सकता था, जब कन्या स्वयं उस वर को स्वीकार कर ले। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि चाहे कोई लड़की वीर्यशुल्का हो, चाहे यों ही उसका हरण हुआ हो, उसकी मान-मर्यादा क्षत्रिय वीरों के हाथ में सर्वथा सुरक्षित थी। आवश्यकता पड़ने पर वह दो हाथ किसी बलात्कारी नरपिशाच से स्वयं भी कर सकती थी। श्री कृष्ण ने द्वारका के दुर्ग की रक्षा की संभावना अपनी जाति की स्त्रियों से भी तो की थी। हरण में और किसी पर बलात्कार हो, बालिका पर बलात्कार न होता था। वह तो उसका एक क्षत्रिय योद्धा की कोमल प्रार्थना सुनने के लिए जाना मात्र था, जिसको वह सुनने से पूर्व भी ठुकरा सकती थी, सुनकर भी लौटा सकती थी।

उस समय की विवाह-विधियों का उपर्युक्त विवरण यहाँ इसलिए दे दिया गया है कि श्री कृष्ण का रुक्मिणीहरण ठीक रूप में अपने पाठकों के सम्मुख आ जाए। आगे सुभद्राहरण की बात आएगी। उस समय भी हरण का यह रूप ध्यान में रखना घटनाओं का ठीक वास्तविक स्वरूप समझने के लिए आवश्यक होगा। दुरुपयोग किसी भी शैली का हो सकता है। परन्तु किसी भी प्रथा का वास्तविक रहस्य उसके उत्तम स्वरूप में निहित होता है। कृष्ण और अर्जुन उस समय के महापुरुष थे। इन्होंने अपने समय की शैली का अनुसरण उत्तम ढंग से किया।

हम ऊपर यह तो देख ही चुके हैं कि कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह-संयोग हार्दिक प्रेम का संबंध था। उत्तम सन्तान की उत्पत्ति के लिए दोनों ने बारह वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक तप किया। इस तपस्या के फल-स्वरूप प्रद्युम्न पैदा हुआ, जो क्या रूप और क्या शील दोनों में दूसरा कृष्ण था। कृष्ण को इस सन्तान का इतना अभिमान था कि जहाँ कहीं ये उसका वर्णन करते, उसे 'मे सुतः' मेरा पुत्र कहते। कृष्ण कितने तपस्वी थे, कितने संयमी, कितने सदाचारी थे, इसी एक घटना से स्पष्ट है।

द्रौपदी का स्वयंवर

कृष्ण की एक फूफी थी पृथा। उसे बचपन में ही इनके दादा शूर ने अपने मित्र कुन्तिभोज को, जो मालवे की ओर का राजा था और जिसके अपनी सन्तान न थी, दे दिया था। पृथा दूसरे शब्दों में भोजराज कुन्ति की गोद ली हुई कन्या थी। इसी से पृथा का नाम कुन्ती हुआ। वह अब वृष्णि-कुल की न रहकर कुन्ति के कुल की हो गई। वही इसका गोत्र हुआ और वही इसका पिण्ड। कुन्तिभोज ने पृथा का स्वयंवर रचा, जिसे पाण्डु ने जीता। पाण्डु की युधिष्ठिर आदि सन्तान इसी पृथा (जिसका दूसरा नाम कुन्ती था) के पेट से हुई।

दुर्योधन के बनवाए लाक्षागृह से बचकर पाण्डव अपनी माता कुन्ती के साथ जंगलों में छिपते फिरते थे कि इन्हें पांचालराज द्रुपद की कन्या यज्ञसेनी के स्वयंवर की खबर मिली। ये ब्राह्मणों का वेष धारण कर स्वयंवर में पहुँचे। श्री कृष्ण भी इस पुण्य उत्सव को देखने के लिए पांचाल पहुँचे थे। द्रुपद ने एक कड़ी कमान बनवा रखी थी, जिस पर चिल्ला चढ़ाना बहुत कठिन था। आकाश में एक यन्त्र लगवा दिया था। उस यन्त्र में लक्ष्य था। शर्त यह थी कि जो कमान पर चिल्ला चढ़ाकर तीर से लक्ष्य को वेध दे, यज्ञसेनी उसी की होगी।

राजसभा में से बहुतों ने कमान खींचने का प्रयत्न किया, परन्तु घुटनों से ऊपर उसे कोई न ले जा सका। कर्ण बढ़ा था कि द्रौपदी ने कह दिया-मैं इस सूत-पुत्र से विवाह न करूँगी। अब ब्राह्मण-दल से अर्जुन निकला। उसने धनुष उठाया, खींचा, निशाना जमाया, और लक्ष्य की ओर तीर छोड़ा जो सीधा निशाने को वेध गया। द्रौपदी उसके पीछे हो ली।

राजा लोग यह कैसे सहन कर सकते थे कि उनके स्वयंवर का विजेता एक ब्राह्मण हो ! उन्होंने शोर मचाया और लड़ने को तैयार हुए। इधर भीम ने पास खड़े किसी वृक्ष को उखाड़ा और उसी की चटपट गदा बना ली।

thearyasamaj.org

यह सब कौतुक श्री कृष्ण एक ओर खड़े होकर देख रहे थे। उन्होंने इससे पूर्व पाण्डवों को कभी देखा न था, उनकी केवल प्रसिद्धि सुनी थी। यह भी सुन रखा था कि दुर्योधन ने उन्हें लाख के घर में ठहराकर जलवा दिया है। इसके पश्चात् फूफी पृथा और उसके पुत्रों का क्या हुआ, इसका उन्हें पता न था। सब राजाओं को इस प्रकार निष्फल और एक ब्राह्मणकुमार को सारे क्षात्र-मण्डल के कान कतरता देख कृष्ण ताड़ गए, हो न हो यह अपूर्व धनुर्धारी अर्जुन ही है। और जब उसके पास उसी के एक भाई को वृक्ष उखाड़ते और उससे गदा का कार्य लेने को उद्यत खड़े देखा तो उन्हें निश्चय हो गया कि भीम भी साथ है। और फिर इन दोनों की ओर बढ़ते एक गोरे, लम्बे, सुन्दर कमलाक्ष सिंह की तरह चलने वाले परन्तु विनम्र वीर को देखा तो समझ गए निश्चय ही यह युधिष्ठिर है। कार्त्तिकेय-स्वरूप और दो कुमारों को भी इन पाँच ब्राह्मणों की टोली में देखा तो सन्देह का अवसर ही न रहा। अपने भाई बलराम से बोले, 'बधाई हो ! पृथा जीती है। ये उसी के विजयी कुमार हैं।'

इतने में कर्ण ने अर्जुन से धनुर्विद्या के दो वार किये, परन्तु वह इसके शरों की शक्ति और निशाने की सीध को देखकर मान गया कि इसे जीता नहीं जा सकता। यह तो जैसे मूर्त धनुर्वेद है। उधर शल्य और भीम में मल्लयुद्ध हो गया। ये भी दो चार बार आपस में गुत्थमगुत्था हुए। फिर तो भीम ने जैसे शल्य को ऊपर उठाया और नीचे पटक दिया। सारे राजसमाज में सन्नाटा छा गया। क्षत्रियों को क्रोध भी था, विस्मय भी। श्री कृष्ण को डर हुआ कहीं सब राजा मिलकर इन दो कुन्ती-कुमारों पर आक्रमण न कर दें। और तो जो हो, कहीं इनका भेद ही न खुल जाए। कृष्ण की उस समय के क्षत्रियों में धाक थी। इनकी बात सुनी जाती थी। ये बढ़े और उन्मत्त राजाओं को समझाने लगे-'भाई ! वह बाज़ी ले तो धर्म ही से गया है, फिर इस होहल्ले से लाभ क्या ? अपनी वीरता का फल उसे भोगने दो !' बात सच्ची थी और अपने ही एक भाई-बन्द के मुँह से निकली थी। सबके हृदय में बैठ गई। राजा लोग अपने-अपने डेरों में चले गए और पाण्डव वीरों ने अपनी कुटी का रास्ता लिया।

कृष्ण के आनन्द का पारावार न था। खोई हुई फूफी, खोये हुए फुफेरे भाई फिर से मिल गए। जिन भाइयों के बल-पराक्रम की कहानियाँ सुनी हैं, पर मिलने का अवसर इससे पूर्व कहीं नहीं हुआ, उनसे भेंट होगी और वह होगी कहाँ ? जंगल में, जहाँ वे वेश बदलकर परिचित मात्र से छिपते फिर रहे हैं ! आज उनका विजयोत्सव है, परन्तु है कहाँ ? भृगुपुत्र की पर्णकुटी में-एक कुम्हार के घर। जब उनसे कहूँगा, 'चोरो ! पकड़े गए हो' तो वे कैसे चकित होंगे ? यह सोचते-सोचते कृष्ण कुम्हार के आँवे पर जा पहुँचे। युधिष्ठिर के पाँव पकड़कर बोले-मैं कृष्ण हूँ। तत्पश्चात् पृथा के पाँवों में झुककर अभिवादन किया। युधिष्ठिर ने पूछा, "भाई ! पहिचाना कैसे ?" कृष्ण ने उत्तर दिया-"आग को लाख छिपाइए, उसकी लपटें उसे प्रकट कर ही देती हैं। यह बल, यह विक्रम पांडवों के सिवा और किसका हो सकता है ?" इस प्रकार की प्रेम की बातें कर श्री कृष्ण अपने डेरे पर लौट आए।

स्वयंवर हुए पीछे विवाह में कितनी देर लगनी थी ? विवाह हो जाने पर श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर के पास बहुमूल्य पुरस्कार भेजे। कई प्रकार के मोती, हीरे, लाल, जवाहर, देश-देश से आए हुए बहुमूल्य वस्त्र, सुन्दर कंबल, कोमल खालें, बिछौने, तख्त, गाड़ियाँ, बर्तन, मोतियों से जड़े चित्र, देश-विदेश की सुन्दर सेविकाएँ, सजाए हुए घोड़े, सजे हुए हाथी, सुनहरे कपड़ों से मढ़े हुए हाथी-दाँत के रथ, ढेरों खरा सोना और सोने के भूषण इत्यादि बहुविध पुरस्कार प्रस्तुत किये। युधिष्ठिर ने यह प्रेम की भेंट अत्यन्त प्रेमपूर्वक स्वीकार की।

अर्जुन और कृष्ण की मित्रता यहीं से आरम्भ होती है। एक सूरमा को दूसरे सूरमा से प्रीत होते क्या देर लगनी थी ? युधिष्ठिर तो फिर आयु में बड़े थे। उनमें पूजा-बुद्धि रखना ही उचित था। अर्जुन इनके अपने वयस् के थे। उनकी-इनकी झट एकात्मता हो गई। कृष्ण के एक इशारे-मात्र से स्वयंवर के समय का समस्त राजसमाज, जो एक ब्राह्मण-वेषधारी ब्रह्मचारी की करतूत से अपने-आपको अपमानित अनुभव कर क्रोधान्ध हो रहा था, तुरन्त शान्त हो गया। इनकी मित्रता पाकर पाण्डवों ने अपने-आपको धन्य माना और अपने सभी कार्यों में इन्हीं की आज्ञा के आधीन रहने लगे।

द्रुपद से सम्बन्ध हो जाने के पीछे पाण्डवों की शक्ति बढ़ गई। इन्हें अब अपने-आपको छिपाने की भी आवश्यकता न रही। कौरवों ने पहिले तो कुछ ननुनच किया, परन्तु फिर स्वयं ही आधा राज्य इन्हें दे दिया। खाण्डवप्रस्थ का इलाका इनके हिस्से आया। ये बाजे-गाजे के साथ वहाँ गए तो कृष्ण इनके अगुआ थे। 'इन्द्रप्रस्थ' (वर्तमान देहली) को अपनी राजधानी बनाकर इस नई पाण्डवपुरी को उस समय की सभ्यता का केन्द्र बना दिया। प्राकारों का निर्माण हुआ। परिखाएँ खोदी गईं, सुरक्षा के लिए तलवारें लगाए योद्धा लोग सर्पाकार शक्तियाँ सजाए नगर के चारों ओर नियत हुए। तरह-तरह के यन्त्रजाल रचे गए। नगर को क्रम-पूर्वक सुन्दर बाज़ारों में बाँटा गया। पर्वताकार शीशे की तरह चमकते, तीन-तीन मंज़िल के विमल मकान निर्मित हुए। आकाशचुम्बी ऊँचे-ऊँचे महल बने। उनके द्वारों पर गरुड़ आदि की मूर्तियाँ खूब शोभा दिखाने लगीं। स्थान-स्थान पर बावलियाँ और सरोवर खुदवाए गए। उनके चारों ओर पुष्पवाटिकाएँ थीं। जलीय प्राणी किलोल कर रहे थे। कृत्रिम पहाड़ बनवाए गए। सुन्दर कुञ्ज-निकुञ्ज सजाए गए। वनों से घिरे ताल बनवाए गए। सड़कों और उद्यानों में वृक्ष लगाए गए। दिग्दिगन्तों के वणिकों की कोठियाँ खुलीं। सब प्रकार के शिल्पकार बसे। वेद-वेदाङ्ग के जानने वाले और देश-विदेश की भाषाओं के विशेषज्ञ आर्य-संस्कृति के सुरक्षक ब्राह्मण लोग अपने सरस्वती-मन्दिरों सहित विराजमान हुए। राजभवन के मुहल्ले की विशेष शोभा इन्हीं से थी। नगर की स्थापना उस काल के ब्राह्मणप्रवर श्री व्यास जी के हाथों कराई गई। कुरुकुल के वृद्ध

thearyasamaj.org

भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के पोतों, पाण्डु की सन्तान, कुन्ती और माद्री के लालों को आशीर्वाद देने आए। युधिष्ठिर राजा हुए और द्रौपदी उनकी महिषी। श्री कृष्ण ने द्रौपदी को अपने सखित्व में ले लिया। अर्जुन से तो उन्हें प्यार था ही।

इन्द्रप्रस्थ में इस प्रकार युधिष्ठिर और द्रौपदी के सिंहासनारूढ़ हो चुकने के पश्चात् श्री कृष्ण द्वारका लौट आए।

सुभद्रा का विवाह

तीर्थयात्रा के उद्देश्य से घर से निकले हुए अर्जुन पश्चिम में समुद्र के किनारे प्रभास पहुँचे। प्रभास श्री कृष्ण के राज्य में एक स्थान था। आज तो वहाँ सोमनाथ का मन्दिर है और श्री कृष्ण के देहावसान का पुण्डय स्थान होने से उसे और भी अधिक महत्त्व प्राप्त हो चुका है। उस समय समुद्र के किनारे खड़ा यह एक अत्यन्त रमणीय नगर था। श्री कृष्ण को पता लगा कि अर्जुन प्रभास आए हैं तो ये उन्हें वहीं मिलने गए। दोनों वीर एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक गले मिले। दोनों ने एक-दूसरे का कुशल-समाचार पूछा। प्रभास से श्री कृष्ण अर्जुन को रैवतक पहाड़ पर लाए। कुछ समय पर्वत की सैर की। फिर तुनहरी रथों में सवार हो द्वारका पहुँचे। द्वारकावासियों ने अर्जुन की वीरता के सुसमाचार सुन रखे थे। द्रौपदी के स्वयंवर का विजेता श्री कृष्ण का प्यारा सखा आ रहा है, उसके स्वागत के लिए द्वारका नई दुल्हन की तरह सँवारी गई। पुरवासियों ने राजमार्ग पर आकर पांडववीर का अभिनन्दन किया। अर्जुन बड़ों से अभिवादनपूर्वक, समवयस्कों से गले मिलकर और छोटों को प्यार करके मिले और फिर आनन्दपूर्वक श्री कृष्ण के पास रहने लगे।

इतने में अन्धक-वृष्णियों का एक त्यौहार आ गया। रैवतक पर्वत को सजाया गया। पर्वत के चारों ओर इन राजा लोगों के भवन थे। वहां से सुन्दर अलंकृत सवारियों में सात्वत सरदार निकले। चारों ओर बाजे बज रहे थे। नर्तक नृत्य कर रहे थे। गायक गीत गा रहे थे। बलराम रेवती के साथ, अन्य सात्वत लोग अपनी-अपनी धर्म-पत्नियों सहित चारों ओर भ्रमण कर रहे थे। गाने-बजाने वाले पुरुष तथा स्त्रियाँ उनके पीछे-पीछे फिर रही थीं। कृष्ण अर्जुन को साथ लिये इस मंगलोत्सव का अवलोकन करते फिरते थे। श्री कृष्ण की बहिन सुभद्रा अपनी सखियों सहित मौज-मंगल मना रही थी। अर्जुन की दृष्टि ज्यों ही उस पर पड़ी, ये प्रेम-पाश में बँध गए। कृष्ण ने भाव-भंगी से जान लिया कि अर्जुन का हृदय अब अपने काबू में नहीं, उनकी दृष्टि उत्सव में न जाकर एक ही दृष्टिबिन्दु पर पड़ती है। वे हँसते हुए बोले-"तीर्थयात्रा में भी काम के बाण चलते हैं क्या ? इच्छा हो तो पिता से बात करूँ ? सुभद्रा कुलभर की प्यारी लड़की है।" अर्जुन ने आँखें झुकाते हुए कहा, "सबको प्यारी यदि मुझे भी प्यारी लगे तो इसमें कौतूहल की बात क्या है ? और यदि मनुष्य इसे प्राप्त कर सकते हों तो मैं इसे प्राप्त करने का प्रयत्न तो करूँगा ही।" कृष्ण बोले-"क्षत्रिय-कन्या या तो स्वयंवर में जीती जाती हैं या उसका हरण होता है। स्वयंवर का क्या फल होगा, क्या शर्त रहेगी, किस बात को पसन्द किया जाएगा, इसका कुछ ठीक नहीं। तुम सुभद्रा का हरण कर जाओ।" पाठक ! देखिए, लड़की का बड़ा भाई स्वयं हरण की सलाह दे रहा है। यदि हरण बलात्कार होता और इसमें लड़की की मान-मर्यादा का भंग सम्भावित होता तो संसार-भर की नारियों के मान-रक्षक कृष्ण क्या अपनी ही बहन की मान-मर्यादा के पीछे लठ लेकर पड़े थे ? यह तो जैसे हम एक बार पहले कह आए हैं, अर्जुन को अपनी प्रार्थना सुभद्रा के सम्मुख रख देने का अवसर प्रदान करना था। यह अवसर वह अपने घर के बड़ों की अनुमति से ही दिलवा देते, जैसे पहले-पहल उन्हें सूझा भी था कि यदि अर्जुन चाहें तो वे अपने पिता से बातचीत करें। परन्तु संभवतः अपने भाई-बन्दों के स्वभाव से उन्हें इनके आपस में ही असहमत हो जाने की आशंका थी। फिर किसी क्षत्रिय-वीर के लिए बिना बल-प्रदर्शन के अपनी हृदयेश्वरी का हृदय हरना शायद उनकी वीरता पर भी लाञ्छन हो।

यह बात कृष्ण और अर्जुन में ठीक हो चुकने पर युधिष्ठिर की अनुमति लेने के लिए दूत भेजे गए. जब उधर से भी हाँ हो गई तो अर्जुन सुभद्रा को रथ में बिठाकर चलते बने। सुभद्रा के बड़े भाई का ही यह प्रस्ताव था। इनका अपना बड़ा भाई युधिष्ठिर भी इसमें सहमत था। रही स्वयं सुभद्रा, वह हँसती हुई रथ में बैठ गई। अब शेष रही उसके अन्य सम्बन्धियों की ओर से रोक-टोक। इसके लिए इन्होंने पूर्व ही से पूरी शस्त्र-सुसज्जा कर ली थी।

रैवतक पर खड़े सैनिकों ने यह दृश्य देखा तो वे तुरन्त द्वारका में आए और सभा (Assembly Hall) की ओर, जिसका नाम सुधर्मा था, दौड़े। सभापाल को सूचना हुई। उसने भेरी बजवा दी। भेरी-नाद किसी आकस्मिक आपत्ति का सूचक होता था। उसे सुनते ही वृष्णि, अन्धक, भोज, सब सभा की ओर भागे। वहाँ उनके लिए सुनहरी मणियों से जड़े कोमल सुन्दर गदेलों से सुशोभित आसन बिछे थे। वे उन पर बैठ गए। सभापाल ने विचार का विषय पेश किया तो झट से उनकी आँखें लाल हो गईं। एकदम धनुष-बाण, फरसे, कवच, रथ, घोड़े-रण-सामग्री की तैयारी के हुक्म दिये जाने लगे। मानो अभी अकेले अर्जुन पर सारा-का-सारा वृष्ण्यन्धक-संघ चढ़ाई कर देगा। कृष्ण अब तक चुप थे। बलराम ने कहा, "भाई ! इनकी सुन लो। करना तो वही होगा, जो ये कहेंगे।" सब ओर से आवाज़ आई-"ठीक है, ठीक है। इनका मत जानना ही चाहिए।" बलराम ने अब कृष्ण को सम्बोधन करते हुए कहा-"यह सब स्वागत जो पार्थ महोदय का हुआ, आपके कारण था। परन्तु आपका सखा ऐसा कृतघ्न, ऐसा कुलाङ्गार निकला कि जिन बर्तनों में उसे भोजन मिला वह उन्हीं में थूक गया। मुझे तो एकाएक ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे सिर पर किसी ने लात मारी है। जैसे साँप के फन पर किसी की लात आ जाए तो वह क्रोध से उन्मत्त हो जाता है, यही मेरी अवस्था हो रही है। अब यदि मैंने अकेले ही इस पृथिवी को कौरवों से खाली न कर दिया तो मैं सात्वत ही नहीं !"

thearyasamaj.org

इस ओजस्वी भाषण का वृष्णियों, अन्धकों, भोजों, सबने समर्थन किया।

अब श्री कृष्ण को उत्तर देना था। इन्होंने धैर्य से कहा-"मेरी समझ में अर्जुन ने सुभद्रा का और सुभद्रा के द्वारा हम सबका मान ही किया है। आर्यपुरुष न अपनी कन्या को बेचते हैं, न दान करते हैं। राजकुमारियों का उपहार है वीरता। अर्जुन ने सुभद्रा के हरण से विरोधियों को युद्ध का आह्वान दिया है। अर्जुन अपनी अजेयता का सिक्का सुभद्रा पर बिठा, उसके हृदयासन पर गौरवान्वित हो विराजमान होगा। आखिर वह किसी छोटे कुल का तो है नहीं कि उसके हरण से हमारी कन्या का अपमान हो गया। भारत का वंशज है। शान्तनु का प्रपौत्र है। कुन्तिभोज का दौहित्र है। इसके साथ विवाह होने सें हमारी कन्या का अपमान कैसे होता है ? अजेय वह है। मेरा रथ ले गया है और शस्त्रास्त्र से सुसज्जित है। मेरी मानो तो बिना लड़ाई के ही उसे अजेय मान लो। वह हमारी कन्या के अनुरूप वर है। तुमने बिना युद्ध के यह स्वीकार कर लिया तो दोनों कुलों की आन रहेगी और प्रीतिपूर्वक सुभद्रा और अर्जुन का पाणिग्रहण हो जाएगा।"

यह विचार सबने पसन्द किया। वृष्णि-वीर स्वयं गए और अर्जुन को लौटा लाए। बड़े आदर-सम्मान से सुभद्रा का उससे विवाह किया गया।

अर्जुन की तीर्थयात्रा अभी शेष थी। वे द्वारका से पुष्कर चले गए। वहाँ कुछ समय रहकर इन्द्रप्रस्थ लौटे। द्रौपदी ने कटाक्षपूर्वक कहा-"जब नई गाँठ बँधती है तो पुराने सम्बन्ध ढीले हो जाते हैं। अजी ! आप वहीं रहिए जहाँ आपकी हृदयेश्वरी हैं।" अर्जुन उसे सान्त्वना देकर नई बहू को ग्वालिन के वेष में घर लाए। इस वेष पर हम ऊपर टिप्पणी कर चुके हैं। सुभद्रा ने पृथा को प्रणाम किया, फिर वह द्रौपदी से मिलकर बोली-"रानी ! मैं तो दासी हूँ।" द्रौपदी ने गले लगाते हुए आशीर्वाद दिया-"सुभगे ! तेरा सौभाग्य बना रहे। तेरा पति अनन्य जेता हो !"

अर्जुन के इन्द्रप्रस्थ पहुँच जाने पर कृष्ण, बलराम और अन्य वृष्णि, अन्धक तथा भोज वीर दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थ आए। नकुल और सहदेव ने वरपक्ष की ओर से बाहर जाकर इनका स्वागत किया। सड़कों पर छिड़काव था। ठण्डे-ठण्डे चन्दनरस की सुगन्ध उठ रही थी। अगर, तगर तथा कपूर आदि के जलने की महक का आनन्द अपूर्व था। युधिष्ठिर ने कृष्ण और बलराम का सिर चूमकर उन्हें छाती से लगाया। दहेज के दो भाग थे-एक हरण, दूसरा पाणिग्रहणिक। हरण श्री कृष्ण ने दिया, पाणिग्रहणिक बलराम ने। हरण में बहुमूल्य रत्न थे, वस्त्र थे। मथुरा की गायें और बैल, बाल्हीक (झंग) के घोड़े, पर्वताकार हाथी, खच्चर, हज़ारों परिचारिकाएँ, रथ, यान आदि अनगिनत सामग्री थी ; ऐसे ही पाणिग्रहणिक में।

कुछ दिन इन्द्रप्रस्थ के आतिथ्य का आनन्द ले सात्वत सरदार द्वारका लौटे। पाण्डवों ने इन्हें अनेक बहुमूल्य रत्न उपहार में दिये। उन्हें स्वीकार कर ये अपने-अपने घरों को वापस आ गए।

श्री कृष्ण अर्जुन के पास ठहर गए। इनके यहाँ रहते-रहते ही सुभद्रा के लड़का हुआ, लम्बी भुजाओंवाला, विशाल छातीवाला, बैल की-सी आँखों वाला। देखने में मूर्त मन्यु प्रतीत होता था। श्री कृष्ण के रहते उसका नामकरण-संस्कार हुआ। नाम रखा गया-अभिमन्यु।

कृष्ण और अर्जुन उस समय के चोटी के वीर थे। अभिमन्यु में दोनों के गुण पाए जाते थे। अभिमन्यु जहाँ वेदवेत्ता था, वहाँ शस्त्रास्त्र की विद्या के चारों विभागों और दसों प्रकारों पर उसे पूरा आधिपत्य था। अर्जुन को वह कृष्ण प्रतीत होता था और कृष्ण को अर्जुन। दोनों कों उस पर बराबर गर्व था।

खाण्डव-दाह

इन्द्रप्रस्थ के पास खाण्डव नाम का एक विस्तृत जंगल था। नए राज्य की स्थापना के साथ-साथ नई भूमियों का साफ किया जाना भी स्वाभाविक था। श्री कृष्ण और अर्जुन अब इस वन की सफाई पर लगे। इन्होंने जंगल में आग लगवा दी। आग्नेय अस्त्र साथ ले गए थे, जिनका यथा-अवसर प्रयोग होता रहा। जंगल हिंसक पशुओं तथा बड़े-बड़े साँपों और अजगरों का घर था। वन में आग लगते ही वे बाहर भागे। डर यह था कि यदि वे कहीं मनुष्यों के आवास में जा पड़े तो बेचारे आराम से रहते लोगों की जान पर बन आएगी। नई बस्तियाँ बनती बनें, पुरानी बस्तियाँ उजड़ जाएगी। रथ पर चढ़े हुए कृष्ण वन के एक ओर जा खड़े हुए, अर्जुन दूसरी ओर। अन्य अनेक वीर भी इनके साथ होंगे ही। प्रतीत यह होता है कि ये दो उस दाहक सेना के नेता थे। जो जन्तु धधकते हुए जंगल से बाहर निकला, उसे इनके जलते तीरों ने धर लिया। हाथी, चीते, बाघ, शेर, अजगर झुलसे हुए भागे और वन से बाहर आते ही तीरों से बेध दिये गए।

पन्द्रह दिन लगातार यह अग्निकाण्ड जारी रहा। इसमें वर्षा भी हो जाती रही। ओले भी पड़ जाते रहे। कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता रहा कि मूसलाधार मेह इस अग्निक्रिया को आगे न चलने देगा। परन्तु क्षत्रियों के अदम्य उत्साह और न बुझने वाले, बल्कि यों कहिए कि वर्षा तक को सुखा देने वाले आग्नेय बाणों के सामने इन्द्रदेव की चल कुछ न सकी।

वन जले हुए प्राणियों के पञ्जरों से भर गया। वसा ने अग्निदेव की जाठर शक्ति को और चमकाया। उसे मांस और रुधिर अपरिमेय मिला। पावक देव को और चाहिए ही क्या था।

उसी वन के किनारे नागजाति का तक्षक-नामा कोई जंगली मनुष्य रहता था। वह तो उस समय कुरुक्षेत्र गया हुआ था, उसकी स्त्री और पुत्र इस भयानक आग और जलते हुए तीरों की वर्षा में मर ही जाते, परन्तु इन्द्रदेव की कृपा से वे बच गए। उन्हीं के घर से मय नाम का एक विदेशी पुरुष निकला। श्री कृष्ण ने समझा, यह जंगल के जलाने में बाधक होगा। उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र उठाया। मय ने एक ओर धधकती आग देखी, दूसरी ओर चक्र को

thearyasamaj.org

घुमाते देखा। उसने अर्जुन को आवाज़ दी-'बचाना ! बचाना !' अर्जुन को दया आ गई। वासुदेव ने चक्र रख दिया। आग ने उधर रुख ही न किया।

पन्द्रह दिन जंगल में आग लगी रही। छः दिन उसे शान्त होते लगे। तब जले हुए जंगल के चारों ओर फिरकर कृष्ण, अर्जुन और मय नदी के किनारे आ गए।

यहाँ मय ने अर्जुन के आगे हार्दिक कृतज्ञता का प्रकार किया, और कहा-"आपने मेरी जान बचाई है। मैं मय जाति का विश्वकर्मा (इंजीनियर) हूँ। मेरे योग्य कोई सेवा बताइए।" अर्जुन ने माना ही नहीं कि इस जीवन-प्रदाय में कोई कृपा थी। तो भी मय की भावना का निरादर न हो, इसलिए उसे कृष्ण की कोई सेवा कर देने का आदेश दिया। कृष्ण ने गहरे विचार के पश्चात् अन्त को उससे यह सेवा चाही कि वह युधिष्ठिर के लिए सभा का निर्माण कर दे। मय ने इस आज्ञा को स्वीकार किया। युधिष्ठिर को इस सेवाव्रत का पता लगा तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मय का बड़ा सत्कार किया और एक पुण्य दिवस में दस हज़ार किंष्कु (हाथ) परिधि की विमानाकार सभा की आधार-शिला रखी गई।

यह सब कार्य कर कृष्ण ने पाण्डवों से विदा ली। फूफी के पाँवों पर सिर रखा। पृथा ने इनका माथा चूमा और इन्हें छाती से लगाया। ये सुभद्रा से छुट्टी लेने गए तो इनकी आँखों में आँसू आ गए। इन्होंने उसके हित की मीठी-मीठी दो-चार शिक्षाएँ दीं। सुता-सदृश भगिनी का प्रणाम ले तथा द्रौपदी से मिलकर पाण्डव-कुल के पुरोहित धौम्य की वन्दना की। अन्त में पाण्डवों से घिरे हुए कृष्ण बाहर के आँगन में ब्राह्मणों के सम्मुख आए। उनके स्वस्तिवाचन सुन, दही, अक्षत, फल आदि की भेंट प्राप्त कर तथा उनकी प्रदक्षिणा कर रथ में बैठे। युधिष्ठिर ने स्वयं सारथि का स्थान लिया। अर्जुन चँवर डुलाने लगे। डेढ़ मील दूर जाकर कृष्ण ने युधिष्ठिर के पाँव छू उनसे विदा माँगी। पौर-जन ठहर गए और जब तक रथ आँखों से ओझल न हो गया, दर्शन के प्यारे नेत्र पीछे से ही उस महावीर की अर्चना करते रहे।

द्वारका पहुँचकर श्री कृष्ण सात्वत-वृद्ध आहुक और यशस्विनी माता से मिले। सबका यथायोग्य सत्कार करने और छोटों को गले लगाकर प्यार करने के पश्चात् गुरुजनों की अनुज्ञा ले रुक्मिणी के महल में चले गए।

युधिष्ठिर का राजसूय (१) जरासन्ध का वध

युधिष्ठिर ने अपने राज्य का प्रबन्ध खूब किया। प्रजा-जनों के लिए महाराज पितृसमान हो गए। राज्य की समृद्धि बढ़ गई। वर्षा पर्याप्त और समय पर होने से कृषि खूब होती थी। व्यापारियों को वाणिज्य से उत्तरोत्तर अधिक लाभ होने लगा। ग्वालों का गोधन बढ़ गया। घर-घर यज्ञ होते थे। कर की प्राप्ति समय पर हो जाती थी। इसमें अनुकर्ष (ऋण) नहीं रहता था ; न कर की प्राप्ति में बलात्कार ही करना पड़ता था। स्वास्थ्य का सुप्रबन्ध था। रोग नहीं फैलते थे। आग न लगने दी जाती थी। अधिक ब्याज लेने की मनाही थी। चोरों, डाकुओं, ठगों की नहीं चल सकती थी। राजा के प्रेम ने लोगों के दिलों में घर कर लिया था। भिन्न-भिन्न स्थानों के व्यापारियों के साथ-साथ उन स्थानों के राजा लोग भी कर देने और युधिष्ठिर का कहा करने को उद्यत थे। माण्डलिक राजा लोगों का आपस में कलह मिट गया था। उनका आपस में सन्धि-विग्रह आदि इनके कहने से हो रहा था। कोई कामना के अधीन, कोई प्यार से, कोई स्वार्थवश इनके अधीन हो गया था। इस प्रकार इनके शासन का विस्तार बढ़ रहा था। दिग्दिगन्तरों के प्रजा-वर्ग के हृदयों में इनके लिए अनुराग पैदा हो गया था। प्रेम के विजय से तो ये सर्वराट् हो ही चुके थे।

राज्य की यह अवस्था हो जाने पर इनका विचार हुआ कि राजसूय यज्ञ कर अपने-आपको सम्राट् उद्घोषित करें। इससे अन्य राजा भी जो इनके अनुरक्त हैं, एक संगठन के अन्तर्गत हो जाएँगे। युधिष्ठिर की नीति इनके छोटे-से राज्य में परिमित न रहकर इनके धर्मशासन का क्षेत्र नियमित रूप से अधिक विस्तृत हो जाएगा। इस विषय में इन्होंने अपने मन्त्रिमण्डल तथा मित्र-बन्धुओं से मन्त्रणा की। सबने इस विचार का समर्थन किया। अन्त में श्री कृष्ण को द्वारका से बुलवाया। उनके सम्मुख राजसूय का प्रस्ताव रखकर कहा-"कई लोगों ने मित्रता-वश मेरे दोषों पर दृष्टि नहीं डाली। कई स्वार्थ के मारे सच नहीं कहते। आप इन निर्बलताओं से ऊपर उठे हुए हैं। काम-क्रोध-रहित हैं। जिस बात से अधिक लोक-हित हो, वही आप कहेंगे।"

श्री कृष्ण ने उत्तर दिया-"गुणों की दृष्टि से तो आप सम्राट बनने के योग्य हैं ही, परन्तु इस समय एक महान् सम्राट मगधेश जरासन्ध पहले से विद्यमान है। वह अपने बल-पराक्रम से सम्राट बना है। ऐल तथा ऐक्ष्वाकुवंश की एक सौ एक शाखाएँ हैं। अत्याचार से चाहे जरासन्ध ने उन्हें नीचा दिखा दिया हो, परन्तु उनके हृदयों पर उसका राज्य नहीं। ८६ राजा तो उसने कैद ही कर रखे हैं और फिर घोषणा कर रखी है कि जब कैदियों की संख्या सौ हो जायगी, तो महादेव जी के आगे इनकी बलि चढ़ा दी जायगी। हमने अब तक यह नहीं सुना था कि किसी राष्ट्र के अभिषिक्त राजा को कोई सम्राट् पकड़ रखे। परन्तु इस नृशंस ने यह क्रूरता भी कर दिखाई है। क्षत्रिय का धर्म है रण में मरना। यह इन्हें बलि के पशु बनाकर मारेगा। आओ, हम सब मिलकर जरासन्ध की इस क्रूर इच्छा का प्रतिरोध करें। आज यश का, ख्याति का मार्ग ही यही है। इस समय वही सम्राट् बनने का अधिकारी है जो जरासन्ध को युद्ध में जीते।"

सम्राट् बनने की यह कड़ी शर्त सुनकर युधिष्ठिर ने कानों पर हाथ धर लिया-"जिसे यम नहीं जीत सकता, उसे हम कैसे जीत लेंगे ? और फिर इतना जन-क्षय ! लड़ाई का अर्थ है मनुष्यों को मारना और मरवाना। ऐसे सम्राट् बनने से तो साधु हो जाना अच्छा !" युधिष्ठिर ने स्पष्ट कहा-"महाराज ! मुझे यह सम्राट् पद अभीष्ट नहीं।"

thearyasamaj.org

श्री कृष्ण अपनी मन्त्रणा को इस सुगमता से टलने थोड़ा देने लगे थे ! कहा-"भरत की सन्तान, कुन्ती का पुत्र ऐसा निरुत्साह हो, यह आश्चर्य की बात है 1 जरासन्ध की सेना बड़ी हैं और संग्राम में खून-खराबा भी बहुत होगा। इन दोनों अनिष्टों का उपाय है नीतिमत्ता। साँप भी मर जाए, लाठी भी न टूटे-ऐसी सुनीति कम देखने में आती है। यदि हम चुपके से बिना शोर मचाए उसके महलों में जा खड़े हों और उसे द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारें तो इष्ट की सिद्धि भी हो जाएगी और व्यर्थ की जनहत्या भी न होगी। या हमने उसे लड़ाई में मार लिया या हम स्वयं मारे गए. यदि क्षत्रिय बन्धुओं की रक्षा में हमने अपने प्राण दे दिये तो सीधा स्वर्ग का रास्ता लिया। यों भी जीवन का भरोसा किसे है ? दिन को मारे जाएँ या रात को। युद्ध न करें तो मौत न होगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। जरासन्ध के रक्षक दो पहलवान थे-हंस और डिंभक। वे मर गए। अब तो मुझे जरासन्ध की अपनी बारी आई प्रतीत होती है। रण में उसे जीतना असंभव है। पर हाँ, द्वंद्व-युद्ध में हम उसे मार लेंगे। मेरी नीति और भीम की शक्ति उसके प्राण लेके रहेगी। अर्जुन और भीम को मुझे अमानतरूप में दे दीजिए। फिर देखिये, हम तीनों क्या कर दिखाते हैं !"

युधिष्ठिर अमानत का शब्द सुन खिसियाना हो गया ; कहा- "महाराज ! पाण्डवों के आप नाथ हैं। हम आपके आश्रय से जी रहे हैं। जरासन्ध भी मारा गया, राजा लोग भी छूट गए, राजसूय भी मैंने कर लिया, मेरा संकल्प अभी से सफल हुआ। हमने तो उसका सहारा लिया है, जो न्याय और नीति के सब विधान जानता है, जो लोक-प्रसिद्ध नीतिज्ञ है। फिर हमारे काम सिद्ध क्यों न हों ? मेरे दोनों भाई आपके अर्पण हैं। ले जाइए।"

अर्जुन और भीम दोनों प्रसन्न थे। क्षत्रियों को धर्म-युद्ध मिले, उन्हें और क्या चाहिए ? झट चलने को तैयार हो गए। श्री कृष्ण ने जरासन्ध के साम्राज्य का वर्णन करते हुए उसके अधीनस्थ राजाओं के नाम भी लिये। अपने साथ उसके युद्धों की ओर संकेत भी किया। यह भी कहा कि जरासन्ध ही के उपद्रवों के डर के मारे हम द्वारका चले गए हैं। तो भी इस अपने संघ के वैमनस्य को जरासन्ध से लड़ाई का हेतु नहीं बनाया। इनके अपने संघ की आपत्ति तो कभी की दूर हो चुकी। अन्धक-वृष्णि अब मौज से रहते हैं। इस समय प्रश्न किसी कुल-विशेष का नहीं, सारी क्षत्रिय-जाति का है। युधिष्ठिर को सम्राट् बनना चाहिए, इसलिए कि उसका राज्य-प्रसार धर्मानुकूल है। छोटे-छोटे राष्ट्र एक-दूसरे से सर्वथा पृथक् रहें, इससे यह अच्छा है कि वे एकसूत्र में बँध जाएँ। फिर बँधना भी उन्हें प्रीति के सूत्र में चाहिए, न कि किसी के अत्याचार के कारण उसके अधीन होना। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के राजाओं को कैद कर उन्हें बलि चढ़ाया जाए, इसलिए कि वे अधीनता स्वीकार नहीं करते या निर्बल हैं, यह इन क्षत्रिय वीरों को सहन न था। इसीलिए जरासन्ध को मारने और युधिष्ठिर को सम्राट् बनाने का सारा उपक्रम हो रहा था। द्वारका में संघ काम कर ही रहा था। यादव जरासन्ध की अधीनता से छुटकारा पाकर स्वराज्य का सुख भोग ही रहे थे। परन्तु वे तथा अन्य भारतीय राष्ट्र स्वेच्छा से किसी दयालु सम्राट् के अधीन हो जायँ, जो राजा सब प्रजा के हित के लिए पितृतुल्य हो तो यह उनके लिए अधिक श्रेयस्कर है। किसी राष्ट्र की आन्तरिक नीति में ऐसे सम्राट् का हस्तक्षेप नहीं होता था ; उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर ही उसकी दृष्टि रहती थी।

जरासन्ध को मारने के निश्चय से श्री कृष्ण, अर्जुन और भीम इन्द्रप्रस्थ से मगध की ओर चले। जरासन्ध का यह व्रत प्रसिद्ध था कि कोई ब्राह्मण अथवा स्नातक उससे मिलना चाहे तो चाहे आधी रात हो, वह उससे मिल सकता था। इन तीनों ने स्नातकों का वेष धारण कर लिया। मगध की राजधानी उन दिनों गिरिव्रज (राजगृह) थी। वहाँ पहुँचकर इन्होंने एक माली से पुष्पमालाएँ छीनीं। उपद्रव पर तुले ही हुए थे। एक मौज यह भी सही ! गिरिव्रज के चारों ओर पर्वत-श्रृङ्ग थे, जो अब भी विद्यमान हैं। उनमें से एक को एक ओर से तोड़ इन्होंने नगर में प्रवेश किया और सीधे राजा के महल पहुँचे। भीम और अर्जुन उस दिन मौनी बने हुए थे। श्री कृष्ण इनका परिचय देने लगे। जरासन्ध ने पाद्य, मधुपर्क, गोदान आदि से इनका सत्कार किया, जैसे स्नातकों का करना विहित है। श्री कृष्ण ने उसे बताया कि उनके साथ आधी रात को ही मौन का व्रत तोड़ेंगे। इसलिए उसी समय महाराज आएँ तो बातचीत हो सकेगी।

जरासन्ध ने इनका डेरा यज्ञशाला में करा दिया और स्वयं राजभवन में चला गया। आधी रात को इनसे मिला तो इनके गिरिश्रृङ्ग तोड़ने की करतूत का वृत्तान्त सुन ही चुका था। इनकी भुजाओं पर ज्या के चिह्न देखे। समझ गया, क्षत्रिय हैं। आते ही पूछा-"महानुभावो ! यह वेष-परिवर्तन क्यों कर रखा है ? किस निमित्त से यहाँ आना हुआ ? सीधे द्वार से न आकर गिरिश्रृङ्ग तोड़कर आने का क्या प्रयोजन है ? ये सब बातें विस्तार से कहिये।"

श्री कृष्ण ने उत्तर दिया-"जितना ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म का जानने वाला स्नातक होता है उतने ब्राह्मण तो हम हैं ही। रहा वर्ण, सो स्नातक तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी होते हैं। हम क्षत्रिय-स्नातक हैं। पुष्पमाला सौभाग्य का चिन्ह है, इसलिए धारण की है। मौनी इसलिए हैं कि क्षत्रिय भुजा का बहादुर होता है, बातों का नहीं। द्वार से न आने का कारण यह है कि आप हमारे शत्रु हैं। शत्रु के नगर में दीवार तोड़कर जाना चाहिए। इसी से आप हमारे आने का प्रयोजन समझ लीजिये।"

जरासन्ध ने चकित होकर पूछा-"मेरी आपकी शत्रुता किस बात की ?"

श्री कृष्ण ने उत्तर दिया-"तूने कितने ही राजा कैद कर रखे हैं और फिर उन्हें महादेव की बलि चढ़ा देने का संकल्प भी किया हुआ है। नरबलि कभी किसी ने इससे पूर्व सुनी भी है ? तू अपनी जाति का घातक है, हम उसके रक्षक। तुझे उन्माद इस बात का है

thearyasamaj.org

कि तेरे जैसा बलवान् कोई नहीं। यह उन्माद वृथा है। मैं शूर का पोता कृष्ण हूँ। ये पाण्डुपुत्र भीम और अर्जुन हैं। हमारी तुझे आज चुनौती है। या तो इन राजाओं को छोड़ दे, अन्यथा यमपुरी का रास्ता साफ और सीधा है।''

कृष्ण ने युद्ध का आह्वान जरासन्ध को दे दिया और वह भी अकेले में। इसी में कृष्ण की नीति-निपुणता थी। जरासन्ध को अपने बल का गर्व था। आई ललकार को लौटा न सकता था। मन्त्रियों के होते संभव था कि स्थिति कुछ और हो जाती, कोई अन्य वीर बीच में आ पड़ता। इस समय कोई और था ही नहीं। जरासन्ध ने कैदी छोड़ने से साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा, ''सेना लाकर लड़ना हो, तो सेना-सहित उद्यत हूँ। अकेले लड़ना हो, अथवा दो या तीन को मिलकर लड़ना हो, मैं सब तरह तैयार हूँ।''

कृष्ण द्वंद्व-युद्ध के लिए तैयार होकर आए थे। इन्होंने द्वंद्व-युद्ध करना मान लिया। इस बात का निश्चय कि वह किससे लड़े, उसी पर छोड़ दिया। उसने भीम से मल्लयुद्ध करना स्वीकार किया।

दूसरे दिन नगर के ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों-सब प्रकार की तथा हर आयु की जनता के एक बड़े समारोह में जरासन्ध और भीम की कुश्ती हुई।

वीर-युगल ने पहले एक-दूसरे से हाथ मिलाए, फिर वे एक-दूसरे के पाँवों की ओर झुके। तदनन्तर अपनी-अपनी कक्षों पर हाथ मारने लगे। उनकी भुजाओं से लटकते बाजूबन्दों के फुंदन हिलने लगे। ये प्रारम्भिक क्रियाएँ कर वे एक-दूसरे पर लपके। एक-दूसरे के कन्धों पर मुक्के मारते हुए तथा एक-दूसरे के शरीर को अपने अंग में लपेटते हुए और दबाते हुए वे क्षण-भर गुत्थमगुत्था रहे और फिर झट अलग हो अपनी छातियों को अपने हाथों से बजाने लगे। तदनन्तर वे कभी बाहु फैलाते, कभी सिकोड़ लेते, कभी मुट्ठी बाँधते, कभी खोल देते। इस प्रकार चित्रहस्त तथा चित्रपाद कर दोनों ने एक-दूसरे को कमर से जा लिया। इसके पश्चात् एक-दूसरे के गलों तथा कपोलों पर ऐसे प्रहार किये कि दोनों के आहत शरीरों में बिजली दौड़ने लगी। फिर दोनों ने अपने बाहु तथा पैरों को घुमाकर प्रतिपक्षी को गिराने का प्रयत्न किया। दोनों की नाड़ियाँ कस गईं. उनमें दर्द होने लगा। इसी बीच में उन्होंने एक-दूसरे की छाती पर हाथों से खूब प्रहार किये। फिर अपने दोनों पंजों को ग्रसित कर एक-दूसरे का सिर बलपूर्वक दबोचा। ऐसा करते-करते प्रतिपक्षी के पेट के नीचे हाथ डाल, उसे अपनी छाती के ऊपर लाकर एक ओर गिरा दिया। जिस प्रकार बना, एक-दूसरे की भुजाएँ मरोड़ीं। मुक्का दिखाकर प्रदर्शित लक्ष्य से अन्यत्र प्रहार किया। प्रतिपक्षी को कभी अपनी ओर खींचा, कभी पीछे धकेल दिया। घुटनों से एक-दूसरे को मारा और भींचा। इस प्रकार उभरी छातियों और लम्बी भुजाओं वाले पहलवानों की वह जोड़ी कार्तिक मास की प्रथमा से लेकर तेरस तक लगातार लड़ती रही। चौदस की रात को जरासन्ध थककर हटने लगा। कृष्ण ने इस अवसर को तोड़ भीम को इन शब्दों में सचेत किया कि थका शत्रु लड़ाई में मारने को कम मिलता है। इस पर भुजाओं का भरसक प्रहार कर, यह मर जाएगा। भीम चौंका भी, ज़ोर-ज़ोर से मुक्के भी मारने लगा, परन्तु जरासन्ध का कुछ बिगड़ा नहीं। अब श्री कृष्ण ने भीम को याद दिलाया, तू तो वायुसुत है। तुझमें प्रभंजन की शक्ति है, वार कर ! भीम ने यह प्रोत्साहन सुनते ही ज्यों ही जरासन्ध को टाँगों से पकड़ा और खींचा कि उसका शरीर झट चिर गया और उसके दो टुकड़े हो गए। सारे अखाड़े में हा-हाकार मच गया। विजय भीम की हुई।

(सभा० २३.१०-३५; २४.१-६)

जरासन्ध के मारे जाते ही श्री कृष्ण ने सबसे पहला कार्य यह किया कि कैदी राजाओं को कैद से छुड़ा दिया। उनके रोम-रोम से धन्यवाद फूट-फूट कर निकल रहा था। श्री कृष्ण उनके प्राणदाता थे। वे सब गद्गद प्रसन्न हुए कह रहे थे-''देवकीसुत श्री कृष्ण का यह आचरण उनकी महिमा के सर्वथा अनुरूप है।'' विमुक्त राजाओं ने आगे के लिए अपने प्राणदाता का आदेश चाहा। श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय की चर्चा कर उन्हें प्रोत्साहना दी कि सभी युधिष्ठिर के साम्राज्य में सम्मिलित हो जाओ। मगध का राजसिंहासन जरासन्ध के पुत्र सहदेव का अर्पण कर दिया गया।

बिना अधिक रक्तपात किये एक सम्राट् को रास्ते से हटा दिया। यह श्री कृष्ण ही से होना संभव था। अब राजसूय का मार्ग साफ था। छियासी राजा तो एक ही बार में अधीन हो गए।

युधिष्ठिर का यह कार्य कर कृष्ण द्वारका लौटे। जाते समय पाँचों भाइयों ने इनकी प्रदक्षिणा की। यह हार्दिक कृतज्ञता का प्रकाश था।

(२) अर्घ्य-दान

जरासन्ध का वध युधिष्ठिर के राजसूय का श्रीगणेश था। इससे छियासी राजकुलों के प्रमुख पुरुष तो स्वयं ही पाण्डव-साम्राज्य के अंग बन गए। अब युधिष्ठिर के चारों भाई दिग्विजय के लिए एक-एक दिशा में सेनाएँ लेकर निकले। अर्जुन उत्तर की ओर गए। उन्होंने कुलिन्द (वर्तमान गढ़वाल तथा सहारनपुर), आनर्त, कालकूट, शाकल (सियालकोट) प्राग्ज्योतिष (असम), उलूक, देवप्रस्थ, कश्मीर, दार्व, कोकनद, अभिसारी (राजौरी), उरगा (हजारा), सिंहपुर (पिण्डदादनखाँ के पास), सुह्य, बाह्लीक, दरद (दर्दिस्तान, जो कश्मीर के उत्तर में है), काम्बोज (अफ़ग़ानिस्तान), किम्पुरुष (नेपाल), हाटक (मानसरोवर के आस-पास का प्रांत), उत्तर हरिवर्ष (तिब्बत) इत्यादि राज्य जीते और सब जगहों से बहुमूल्य 'कर' लाए। प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त ने प्रीतिपूर्वक कर देना स्वीकार किया ; ऐसे ही उत्तर कुरु या उत्तर हरिवंश के लोगों ने। पर्वतों में कहीं-कहीं गण-राज्य थे। उत्सवसंकेत नाम के सात गणों ने पाण्डवों की मुख्यता स्वीकार की। इनके अतिरिक्त

thearyasamaj.org

पाँच गण और भी साम्राज्य में सम्मिलित हुए।

भीम के हिस्से में पूर्व दिशा के राज्य आए। इन्होंने पांचाल (रुहेलखण्ड), गंडक, विदेह (तिरहुत), दशार्ण (छत्तीसगढ़), पुलिंद (हरिद्वार के आसपास का स्थान), चेदि (बुन्देलखण्ड), कोशल (अयोध्या), उत्तर कोशल, मल्ल (मलावा), भल्लाट, क्रथ, मत्स्य (जयपुर), मलद (शाहाबाद), बरार, शुक्तिमान्, वत्सभूमि (कुसुम्भी), निषाद (मारवाड़), दक्षिण मल्ल, मगध, पुण्ड्र (बंगाल), कौशिकी-कच्छ (पूर्णिया), बंग, ताम्रलिप्त, सुह्म (राढ़ा, बंगाल और कलिंग के बीच का स्थान), लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) आदि राष्ट्र जीते। इनमें से चेदियों ने बिना युद्ध किये अधीनता स्वीकार की।

सहदेव ने दक्षिण में दिग्विजय किया। इन्होंने अपने बल-पराक्रम और बुद्धि-वैभव से पटच्चर (इलाहाबाद और बाँदा), कुन्तिभोज (मालवा), चर्मण्वती (चम्बल) के किनारे जम्भक के पुत्र की राजधानी जिसका नाम नहीं दिया, रोक (अजमेर के दक्षिण-पूर्व में), झझपुर, अवन्ती (उज्जैन), भोजकट (भीमा नदी के पास), वेण्वाट (उज्जैन कते दक्षिण में), कान्तार, नाटकेय (खानदेश), पाण्डच (तिन्नावली और मदुरा), किष्किन्धा, माहिष्मती (महेश्वर), त्रैपुर (जबलपुर), सुराष्ट्र (काठियावाड़), चेर, दण्डक (महाराष्ट्र), सुरभिपट्टन (मैसूर), ताम्रद्वीप, सज्जयन्ती (थाना), करनाटक (कराड़ा), द्रविड़, केरल (मालाबार), तारवन (चेल), आंध्र, कलिंग, उष्ट्रकर्णिक आदि राज्यों पर प्रभुत्व जमाया।

नकुल पश्चिम में गए। इन्होंने रोहतीक (रोहतक), शैरीषक (सिरसा), महेत्थ, शिवि, अम्बष्ठ, त्रिगर्त (जालन्धर), मालव (मालवा), मध्यमकेय, वाटधान (भटनेर), पुष्करारण्य (अजमेर), सिन्धु, पंचनद, उत्तरज्योतिष, दिव्यकट, रामठ, हारहूण (चजद्वीप), शाकल (रचनाद्वीप), सागर के किनारे रहने वाले यवनों, बर्बरों, किरातों और पल्लवों इत्यादि को जीता। यादव पहले से ही इस साम्राज्य के साथ थे। उन्होंने श्री कृष्ण को अगुआ कर स्वयं कर दे दिया।

इन सब राज्यों के नाम हमने यह दिखाने को दे दिये हैं कि पाठक उस समय के भारत के साम्राज्य का चित्र अपनी आँखों के सामने ला सकें। ऊपर कथित राज्य-सूची में सारा भारतवर्ष समाविष्ट है। उत्तर में अफ़ग़ानिस्तान से लेकर तिब्बत और असम तक और दक्षिण में लंका तक सभी राष्ट्र इस राष्ट्र-गणना में आ जाते हैं। इससे युधिष्ठिर के साम्राज्य के विस्तार का पता लग सकता है। कुछ राज्यों का नाम इस सूची में दो बार आया है, यथा सुह्म। इन्हें अर्जुन ने भी जीता, भीम ने भी। सुह्म राज्य-विशेष का नाम नहीं, जाति-विशेष का नाम है। ऐसे ही उस समय, जो किसी जाति का नाम था, वही उसके राष्ट्र का नाम भी था। एक ही जाति दो स्थानों में बस जाती तो दो राष्ट्रों का एक नाम हो जाता। फिर भौगोलिक स्थिति के अनुसार उनमें संज्ञा-भेद समय स्वयं कर देता था। दिग्विजय के पश्चात् राजसूय-उत्सव हुआ तो उसमें कई राजाओं का प्रतिनिधि बन शिशुपाल ने कहा-"हम युधिष्ठिर के भय से, अथवा लोभ या सान्त्वना के कारण कर नहीं देते। हम तो इसे धर्म में प्रवृत्त देखकर ही कर देते हैं।" इससे साम्राज्य का प्रकार इंगित होता है। यादवों में प्रमुख श्री कृष्ण थे। जरासन्ध के वध में उनकी नीति-निपुणता ही प्रमुख कारण हुई थी। फिर युधिष्ठिर तो रक्तपात के भय से साम्राज्य का विचार ही छोड़ चुके थे। श्री कृष्ण ने ही उन्हें प्रोत्साहन देकर उनसे यह सब कार्य स्वयं कराया था। कृष्ण ने साम्राज्य अपने कुल के लिए नहीं चाहा, पाण्डवों को ही सम्राट् बनाने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। यादवों को जरासन्ध के साम्राज्य से तो निकाल ही लिया, परन्तु युधिष्ठिर के साम्राज्य का उन्हें भी अंग बना दिया।

उपर्युक्त राज्य-गणना से यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में उस समय छोटे-छोटे अनेक राज्य विद्यमान थे। वे सब अपनी आन्तरिक नीति में स्वतन्त्र थे। छोटे-छोटे राज्य आन्तरिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से सदैव अच्छे रहते हैं। इनके प्रबन्ध में सुगमता रहती है। प्रत्येक राज्य जो कमाता है, अपने ही ऊपर व्यय कर डालता है। परन्तु बाह्य सम्बन्धों की दृष्टि से राष्ट्र का अल्प परिमाण झंझटों ही के कारण है। एक तो परस्पर संघर्ष के भय से सैनिक व्यय की मात्रा बहुत बढ़ जाती है, दूसरे-व्यापार तथा आवागमन के मार्ग को, स्थान-स्थान की चुंगी, तथा पासपोर्ट इत्यादि अड़चनें कण्टकाकीर्ण किये रखती हैं। इसके विपरीत एक साम्राज्य एक अधीन होने की दशा में प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को जहाँ मित्र की दृष्टि से देखकर उसके प्राणों का प्यासा नहीं होता, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीयता को सभ्यता तथा संस्कृति की उन्नति का एकमात्र उपाय समझकर पड़ोसी के भले में अपना भला समझता है।

युधिष्ठिर का साम्राज्य इसी दृष्टि से स्थापित किया गया था। यही उसकी 'धर्म में प्रवृत्ति' थी। यादव स्वतंत्र तो थे, परन्तु लड़ाके इतने अधिक थे कि वे साम्राज्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले ही न सकते थे।

राजसूय का समारोह देखने योग्य था। अन्य सभी राजा तो आए ही, हस्तिनापुर से भीष्म, द्रोण, दुर्योधन और उसके भाई भी आए। उन्हें घर ही के लोग समझा गया। दुःशासन भोजन के प्रबन्ध पर नियुक्त हुए ; अश्वत्थामा ब्राह्मणों की आवभगत पर ; भीष्म और द्रोण कृताकृत की देखभाल पर ; संजय राजाओं के स्वागत पर ; कृप सोने-हीरे-पन्ने आदि के निरीक्षण पर। विदुर व्ययकर बने। दुर्योधन उपहार स्वीकार कर रहे थे। श्री कृष्ण आए हुए ब्राह्मणों के पाँव धोने पर लग गए। यों तो राजसूय के कर्त्ता-धर्ता यही थे, परन्तु इस यज्ञ में उन्होंने यही काम सँभाला, जो उनके विनय और सेवा के व्रतों के ठीक अनुरूप था। प्रमुख योद्धा तथा प्रमुख नीतिज्ञ प्रमुख सेवक था। राजसूय का आन्तरिक उद्देश्य इस नम्रता और योग्यता के अद्भुत संयोग से स्पष्ट प्रकट हो रहा था।

युधिष्ठिर की दीक्षा हो चुकी। अब अर्घ्य देने का समय आया। भीष्म ने कहा-"आचार्य, ऋत्विज्, सम्बन्धी, स्नातक और राजा

thearyasamaj.org

को अर्घ्य दिया जाता है। इस यज्ञ में किस-किस को अर्घ्य देना है, इसका निश्चय कर लो।'' युधिष्ठिर ने कहा- ''कोई एक ही ऐसा पुरुष निर्धारित कीजिये, जिसमें ये सब गुण विद्यमान हों।'' भीष्म ने विचारकर कृष्ण का नाम प्रस्तुत किया और कहा कि ''ये उपस्थित सज्जनों में ही नहीं, पृथिवी, भर में अर्घ्य दिये जाने के सबसे उत्तम अधिकारी हैं।'' सहदेव अर्घ्य लाया और वह विधिपूर्वक श्री कृष्ण को भेंट कर दिया गया।

आमन्त्रित राजाओं में चेदिराज शिशुपाल भी विद्यमान था। वह रुक्मिणी के हरण का अपमान नहीं भूला था। भरी सभा में कृष्ण को अर्घ्य दिया जाए, उससे यह निरादर न सहा गया। वह झट आगबबूला हो बोला-''कृष्ण राजा नहीं, फिर इतने राजाओं के रहते इन्हें अर्घ्य क्यों दिया गया ? कृष्ण वृद्ध भी नहीं, इनके पिता वसुदेव भी यहाँ उपस्थित हैं। पिता के होते पुत्र पूजा का पात्र कैसे हुआ ? सम्बन्धियों अथवा आत्मीयों में द्रुपद का नाता इनकी अपेक्षा अधिक घनिष्ठ है। ऋत्विजों में व्यास श्रेष्ठ हैं। शास्त्र जानने वालों में अश्वत्थामा सर्वोत्तम हैं। राजा दुर्योधन विद्यमान हैं। आचार्य कृप हैं। कृष्ण तो न ऋत्विज् हैं, न आचार्य, न राजा। इनको अर्घ्य देना दूसरों का स्पष्ट निरादर करना है।''

इस प्रकार की जली-कटी शिशुपाल ने युधिष्ठिर को सुनाई। फिर कृष्ण को भी खूब बुरा कहा। युधिष्ठिर ने समझा-बुझाकर शिशुपाल को ठण्डा करने का प्रयत्न किया, परन्तु व्यर्थ। तब भीष्म ने कृष्ण की गुणावली इस प्रकार कह सुनाई-''मैंने बहुत ज्ञानवृद्ध महात्माओं का सत्संग किया है। वे श्री कृष्ण के जन्म से लेकर अब तक के महत्त्वपूर्ण कर्मों का वर्णन प्रशंसापूर्वक करते हैं। हम कृष्ण के यश और शौर्य पर मुग्ध हैं। ब्राह्मणों में ज्ञान की पूजा होती है, क्षत्रियों में वीरता की, वैश्यों में धन की और शूद्रों में आयु की। यहाँ मैं किसी ऐसे राजा को नहीं देखता, जिसे कृष्ण ने अतुल तेज से न जीता हो। वेद-वेदांग का ज्ञान और बल पृथिवी के तल पर इनके समान किसी और में नहीं। इनका दान, इनका कौशल, इनकी शिक्षा और ज्ञान, इनकी शक्ति, इनकी शालीनता, इनकी नम्रता, धैर्य और सन्तोष अतुलनीय हैं। ये ऋत्विज् हैं, गुरु हैं, जामाता होने के योग्य हैं, स्नातक हैं और लोकप्रिय राजा हैं। ये सब गुण इस एक पुरुष में मानो मूर्त्त हो गए हैं। इसलिए इन्हें ही अर्घ्य दिया गया है।''

इस पर शिशुपाल और भी लाल-पीला हो गया। उसने भीष्म को बूढ़ा सिड़ी कहा। कृष्ण के बाल-काल के कारनामे एक-एक करके गिनाए और उनका उपहास किया। पूतना-वध को लक्ष्य कर इन्हें स्त्री-घातक कहा। पागल बैल को मारने की गर्हणा कर गोघात का दोष दिया। कृष्ण ने बाढ़ तथा वर्षा में, जो ग्वालों की बस्ती गोवर्धन पर जा बसाई थी और सप्ताह-भर लगातार उसकी देख-रेख कर मानो उसे अपनी ही हथेली पर उठाए खड़े रहे थे और इसी से गोवर्धन-धर नाम पाया था, उस सारी घटना की खिल्ली उड़ाई। गोपों में बाल-काल व्यतीत करने से गोप कहा। गोवर्धन-यज्ञ का ऋत्विज् होने से उन्हें पेटू कहा। कंस को मारा सो कृतघ्न। जरासन्ध का वध कराया सो छली। इसी प्रकार भीष्म के ब्रह्मचर्य पर भी लांछन लगाया और उन्हें बन्दी अर्थात् भाट कहा।

सबसे बुरी बात यह कि राजाओं को उभारा और कहा-''मैं सेनापति हूँ। सब मेरी कमान में आ जाओ और इस राजसूय को होने ही न दो। हमने प्रीतिपूर्वक 'कर' दिया है। इसके बदले में यह अपमान ?''

शिशुपाल ने दाँत पीसे, आँखें लाल कीं। यही अवस्था भीम की थी। वह शिशुपाल पर लपका ही चाहता था कि भीष्म ने रोक लिया। भीष्म ने शिशुपाल को खरी-खरी सुनाई। शिशुपाल ने अपनी अभ्यस्त भाषा में ही उन्हें उत्तर दिया। अन्त में शिशुपाल ने कृष्ण को ललकारा कि ''तू दास है, राजा नहीं। हम तेरा अर्घ्य नहीं लेना चाहेंगे। शक्ति है तो मुझसे लड़ ले। अभी तुझे पांडवों-समेत यमपुरी का रास्ता दिखा दूँ।''

श्री कृष्ण गालियों पर भी चुप रहे। लाल-पीले होने की भी परवाह नहीं कर रहे थे। परन्तु अब स्पष्ट युद्ध का आह्वान किया गया था। अब चुप रहना भीरुता थी। पहले तो उन्होंने राजाओं को सम्बोधन कर इसकी पुरानी करतूतें सुनाईं और कहा कि ''फूफी के कहने से मैंने इसके सौ अपराध क्षमा किये, पर आखिर क्षमा की भी हद है। हम प्राग्ज्योतिष गए हुए थे। इसने हमारे पीछे द्वारका जला दी। कारूषराज के कहने से अपनी मामी को उड़ा ले गया। मैंने फूफी के लिहाज से अब तक उपेक्षा की है, पर आखिर उपेक्षा कब तक ? यह आज तो साम्राज्य को ही चौपट करना चाहता है। व्यक्तिक्रम असह्य है।''

राजाओं ने यह वृत्तान्त सुना तो कुछेक को शिशुपाल से घृणा हो गई और वे कृष्ण की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार लोकमत का कुछ ऐसा भाग, जो स्पष्ट प्रकट होने में किसी संकोच के बंधन में न था, अपने पक्ष में कर इन्होंने सुदर्शन-चक्र का स्मरण किया। बस, अब क्या था ? नरेन्द्रमण्डल के देखते-ही-देखते शिशुपाल का सिर पृथिवी पर आ पड़ा। ललकारा उसने स्वयं ही था, इसलिए कृष्ण को कोई प्रत्यक्ष दोष तो दे ही नहीं सकता था। शिशुपाल की देह का शास्त्र-विहित रीति से दाह-संस्कार किया गया और उसके स्थान पर उसके पुत्र का अभिषेक भी वहीं कर दिया गया।

राजसूय सम्पन्न हुआ और राजा लोग अपनी राजधानियों को जाने लगे। पाण्डवों ने यथायोग्य सत्कार कर उन्हें विदा किया। युधिष्ठिर के भाइयों के साथ-साथ राजकुमार अभिमन्यु आदि भी इस विदाई के कार्य में सम्मिलित थे। इन सबके चले जाने पर कृष्ण ने कुन्ती को युधिष्ठिर के सम्राट् बनने की बधाई दी और सब आत्मीयों से मिलकर द्वारका लौटने की अनुमति माँगी।

श्री कृष्ण को अर्घ्य देना एक राजनैतिक भूल थी। आगे जाकर महाभारत के युद्ध का मूल कारण यही भूल हुई। इसका वर्णन प्रकरण आने पर फिर किया जाएगा।

thearyasamaj.org

श्रीकृष्ण कहां तुम चले गए ?

व्याकुल है सकल जहान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

दुनिया में अविद्या है भारी, दु:ख भोग रहे हैं नर-नारी।
अब पनप गया अज्ञान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

तुमने तो कंस को मारा था, शिशुपाल दुष्ट संहारा था।
तुम थे अद्‌भुत बलवान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

जरासंध, भीम पर मरवाया, था पाण्डवों को जितवाया।
फिर पनप गए शैतान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

तुम दूध, दही, घी खाते थे, गऊएं गोपाल चराते थे।
थे आप गुणों की खान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

अब शासक हैं जग में पापी, करते हैं जुल्म नित संतापी।
हैं पूरे बेईमान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

गऊएं नित मारी जाती हैं, अबलाएं धक्के खाती हैं।
आ जाओ कृपा निधान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

मदिरा पीते हैं नर-नारी, बढ़ गए यहां मांसाहारी।
अंडों की सजी दुकान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

अपमानित हैं वेदाचारी, अब गरज रहे भ्रष्टाचारी।
हैं दु:खी बड़े विद्वान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

कह 'नन्दलाल' मत देर करो, यदुनाथ जगत के कष्ट हरो।
'निर्भय' दो तुम व्याख्यान, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
कर दो जग का कल्याण, श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।

-ले० पंडित नन्दलाल निर्भय भजनोपदेशक गांव बहीन, ज़िला पलवल (हरियाणा)

thearyasamaj.org

रजि. नं. पी.बी./जे.एल–/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज के नियम

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।